वर्ष - 26 अंक 108 जुलाई-सितम्बर, 2009

वर्ष - 26 अंक 108 जुलाई-सितम्बर, 2009

पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर, 2009

सलाहकार समिति

प्रसून मुखर्जी

महानिदेशक

डा. शेषपाल वैद

निदेशक (एस.पी.)

संपादक : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल

सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड

नई दिल्ली-110003

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का जुलाई-सितम्बर, 2009 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रेस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिस-कर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार आप सभी के लिए **श्वेतपोश अपराध व पुलिस का योगदान—एक दृष्टिगत, मानवाधिकार संरक्षण और पुलिस, हरीत्मा से लालिमा तक : छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद की मीमांसा, प्रभावकारी पुलिस नेतृत्व के मौलिक गुणों का सिंहावलोकन, लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं पुलिस प्रशासन, मानवाधिकार और मुख्य दिशा निर्देश गैर-सरकारी संगठनों का मानवाधिकारों के कार्य में योगदान, बालक-बालिका में लिंगीय भेद करना गैर कानूनी, पुलिस-जनता अंतरक्रिया** से संबंधित लेख भी हैं। पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा
संपादक

वर्ष - 26 अंक 108 जुलाई-सितम्बर, 2009

अनुक्रम

श्वेतपोश अपराध व पुलिस का योगदान—एक दृष्टिगत
• *अरुण कपूर* 7

मानवाधिकार संरक्षण और पुलिस
• *डा. के.पी. सिंह एवं सुरेन्द्र भास्कर* 15

हरीत्मा से लालिमा तक : छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद की मीमांसा
• *राकेश कुमार सिंह* 21

प्रभावकारी पुलिस नेतृत्व के मौलिक गुणों का सिंहावलोकन
• *उमेश कुमार सिंह* 28

लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं पुलिस प्रशासन
• *डा. (श्रीमती) अनुपम शर्मा* 36

मानवाधिकार और मुख्य दिशा निर्देश गैर-सरकारी संगठनों का मानवाधिकारों के कार्य में योगदान
• *मीना मल्होत्रा* 40

बालक-बालिका में लिंगीय भेद करना गैर कानूनी
• डा. जयश्री एस भटट् 45

पुलिस-जनता अन्तरक्रिया
• डा. एस.के. कटारिया 56

समीक्षा समिति के सदस्य

प्रो. एम. ज़ैड. खान, नई दिल्ली
प्रो. एस.पी.श्रीवास्तव, लखनऊ
श्री एस.वी.एम त्रिपाठी, लखनऊ
प्रो. बलराज चौहान, भोपाल
प्रो. अरुणा भारद्वाज, नई दिल्ली
प्रो. जे.डी. शर्मा, सागर, (म.प्र.)
प्रो. स्नेहलता टंडन, नई दिल्ली
डा. दीप्ति श्रीवास्तव, भोपाल
प्रो. वी.के. कपूर, जम्मू
डा. शैलेंद्र कुमार चतुर्वेदी, मेरठ
डा. अरविंद तिवारी, मुंबई
डा. उपनीत लल्ली, चंडीगढ़
श्री एस.पी. सिंह पुंडीर, लखनऊ
श्री पी. डी. वर्मा, छत्तीसगढ़
श्री वी.वी.सरदाना, फरीदाबाद
श्री सुनील कुमार गुप्ता, नई दिल्ली

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

कवर डिजायन : राहुल कुमार

अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : रचना इंटरप्राइजिज, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

श्वेतपोश अपराध व पुलिस का योगदान— एक दृष्टिपात

अरुण कपूर,

डब्लू जैड.- बी-37, कृष्णा पार्क एक्सटेंशन,
पी ओ तिलक नगर गली नं.-10
नई दिल्ली-18

अपराध

अपराध एक ऐसा कार्य है जो प्रत्येक व्यक्ति और समाज के लिए अप्रिय और हानिकारक होता है। अपराध एक सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक घटना है। अपराधों के प्रकार जानने से पूर्व यह जानना जरूरी है कि अपराध क्या है? व्यक्ति अपराध क्यों करता है? अर्थात् अपराध के लिए कौन-कौन से कारण उत्तरदायी हैं।

अपराध का अर्थ एवं परिभाषा : अपराध एक ऐसी धारणा है, जो समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है क्योंकि प्रत्येक समाज अपनी सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार कानून— संहिता का निर्माण करता है। इसलिए प्रत्येक समाज में अपराध का निर्धारण पृथक-पृथक आधारों पर किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समाज में अपराध का स्वरूप अलग-अलग होता है। अपराध को दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है— एक कानूनी आधार पर, दूसरे सामाजिक आधार पर। कानूनी आधार पर अपराध से तात्पर्य उस व्यवहार या कार्य से है, जिसके द्वारा आपराधिक विधि का उल्लंघन होता है जबकि सामाजिक आधार पर अपराध से तात्पर्य उस कार्य या व्यवहार से है, जो उस समाज में प्रचलित मूल्यों, आदर्शों, नियमों व रीति-रिवाजों का उल्लंघन करके किया जाता है। आमतौर पर अपराध से तात्पर्य उस आचरण से है जो विधि-विरुद्ध है और जिसके करने से समाज उसके लिए दंड की व्यवस्था करता है। कुछ विद्वानों ने अपराध को इस प्रकार परिभाषित किया है :

इलियट एवं मैरिल के अनुसार : *"अपराध-विधि द्वारा निषिद्ध एक कार्य है जो मृत्युदंड, कारावास, श्रम-गृह, सुधार-गृह में बंदी बनाए जाने के लिए दंडनीय है।"*

सदरलैंड के अनुसार : *"आपराधिक आचरण, वह आचरण है, जिससे आपराधिक विधि का उल्लंघन होता है।"*

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अपराध एक ऐसा कार्य है जिसके लिए समाज दंड का निर्धारण करता है और समाज ऐसा करने की अनुमति नहीं देता। यदि कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करता भी है तो उसे विधि द्वारा दंडित किया जाता है। अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अपराध से अभिप्राय ऐसे आचरण या कार्य से है जो किसी व्यक्ति द्वारा समाज के मूल्यों, आदर्शों या कानूनों का उल्लंघन करके किया जाता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति समाज द्वारा बनाए गए मूल्यों, आदर्शों या कानूनों का उल्लंघन जानबूझकर करता है या अनजाने में करता है तो इस कार्य को ही अपराध कहा जाता है।

अपराध के कारण

अपराध का कोई एक कारण नहीं होता, इसके कई कारण होते हैं। अपराधों के कारणों के बारे में अनुसंधान आज भी जारी है। बहुत से विद्वान अपराध के लिए व्यक्ति व परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराते हैं, जबकि कुछ विद्वान समाज तथा व्यक्ति दोनों को ही अपराध के लिए समान रूप से उत्तरदायी मानते हैं। कुछेक व्यक्तिगत व मानसिक कारकों को भी अपराध का कारण मानते हैं। प्रमुखतया-अपराध हेतु उत्तरदायी कुछेक कारण इस प्रकार हैं :

निर्धनता : यह एक ऐसा कारण है जो स्वयं अपराधों की जननी है। भारत में अधिकांश व्यक्ति गरीबी-रेखा से

नीचे रह रहे हैं। स्कूल में शिक्षा प्राप्त न करना, निम्न जीवन-स्तर, खराब स्वास्थ्य संबंधी परिस्थितियां, अधिक चिंता व तनाव, बच्चों का पालन-पोषण आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो गरीबी में विद्यमान रहती हैं, फलस्वरूप व्यक्ति अवैध साधनों का प्रयोग करते हुए अपराध करते हैं।

बेरोजगारी : गरीबी की तरह ही बेरोजगारी भी एक ऐसा कारण है जो अपराधों के लिए उत्तरदायी है। शिक्षा और बेरोजगारी का आपस में गहरा संबंध है। जब व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत नौकरी नहीं मिलती तो उसमें समाज के प्रति एक अलगाव व विरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसका ध्यान अपराध की तरफ आकर्षित होता है। प्रतिभा पलायन भी इसी दशा का एक महत्वपूर्ण कारण रहा है।

बुरी संगति का कुप्रभाव : खराब संगत में पड़कर व्यक्ति का अपराध करना स्वाभाविक है। व्यक्ति खराब-संगत में शराबखोरी, जुआ खेलना, वेश्यावृत्ति तथा मादक द्रव्य सेवन इत्यादि सामाजिक बुराइयों के चक्कर में पड़कर अपराध करना शुरू कर देता है। इसका मुख्य कारण समूह सिद्धांत, समूह सदस्यता एवं अपने आपको समूह में बनाए रखने की इच्छा इत्यादि है।

आर्थिक प्रतियोगिता : आज का युग भौतिकवादी युग है, जिसमें व्यक्ति अधिकारिक भौतिक सुख प्राप्त करने के साथ-साथ विलासिता की वस्तुएं प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। इसके लिए वह वैध व अवैध सभी साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं चूकता। यह आर्थिक प्रतियोगिता सभी नागरिकों को भ्रष्ट, कमजोर व आलसी बनाने के साथ अपराधों की ओर ले जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कर-चोरी करना, जमाखोरी, कालाबाजारी, खाद्य-पदार्थों में मिलावट तथा ग्राहकों से धोखाधड़ी करना आदि भी आर्थिक भ्रष्टाचार हेतु उत्तरदायी हैं जो कि अपने आप में अपराध ही हैं।

महंगाई : यह अपराधों को बढ़ावा देने वाला एक मुख्य कारण है। आजकल कीमतें आसमान छू रही हैं। गरीब व्यक्तियों को दो-वक्त की रोटी जुटाना भारी पड़ गया है। भूख की आकुलता भी अपराधों को प्रेरित करने का एक मुख्य कारण है।

सामाजिक गतिशीलता : सामाजिक गतिशीलता जहां व्यक्ति के विकास हेतु जरूरी है, वहीं दूसरी तरफ, अपराधों के लिए भी उत्तरदायी हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि वह समाज के उच्च वर्ग में अपना एक अलग स्थान व मुकाम हासिल करे। कई बार धोखा देकर, झूठ का सहारा लेकर व्यक्ति ऐसे कई गलत कार्य कर बैठते हैं।

अलगाव : अलगाव की भावना प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है क्योंकि जब किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों का टकराव सामाजिक हितों से होता है तो वह समाज द्वारा निर्मित कानूनों का उल्लंघन करने की ठान लेता है। उसमें समाज के प्रति घृणा, द्वेष व अलगाव की भावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

युद्ध व प्रवास : यद्यपि सभी सामाजिक सुरक्षा व शांति चाहते हैं फिर भी कभी-कभार दो देशों में युद्ध छिड़ ही जाता है इससे डकैती, चोरी, हत्या, बलात्कार आदि व कीमतों में वृद्धि, खाद्य-पदार्थों का कृत्रिम अभाव इत्यादि के कारण भी अपराधों में अनावश्यक वृद्धि हो जाती है।

समाजीकरण व अपराध : जिस प्रकार मनुष्य अच्छे कार्य करना सीखता है, ठीक उसी प्रकार समाज में रहकर वह आपराधिक कार्य करना भी सीख लेता है। क्योंकि सामाजिक परिस्थितियां ही उसे ऐसा करने को बाध्य करती हैं। जैसे एक बच्चा अपने पिता को बीड़ी या सिगरेट पीते देखता है तो उसके मन में भी ऐसा करने की ललक होती है। अतः अवसर पाकर वह एक दिन सफलता पा ही लेता है और धीरे-धीरे उसका आदी भी हो जाता है।

शारीरिक व मानसिक रोग : कुछ व्यक्ति जो कि शारीरिक विकलांगता अथवा निम्न बुद्धिस्तर (शारीरिक

व मानसिक आदि) का शिकार होते हैं वे अपनी हीनता को छिपाने के लिए अवैध साधनों का इस्तेमाल करते हैं और फलस्वरूप अपराध करते हैं।

जन्मजात गुण : कुछ विद्वानों का मानना है कि जिन बच्चों के माता-पिता आपराधिक प्रवृत्ति के और आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त होते हैं, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों पर भी पड़ता ही है।

शारीरिक अंगों की तीव्र गति से वृद्धि : जिन बच्चों में तीव्र शारीरिक विकास की प्रक्रिया पाई जाती है, उसमें अपरिपक्वता अधिक होने के कारण स्थिति को संभालने में असमर्थता पाई जाती है क्योंकि अधूरा ज्ञान व अपरिपक्वता के कारण भ्रम का शिकार हो जाते हैं और गलत-संगति में पड़कर अपराधों के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। समलैंगिकता और तीव्र यौन-इच्छा इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त अनैतिकता, अंधविश्वास, नर-बलि, पशु-बलि, जादू-टोने आदि भी आपराधिक प्रकृति के मनुष्यों को बल देती हैं। आजकल समाज में नैतिकता का उत्तरोत्तर ह्रास होता चला जा रहा है। मनोरंजन के साधनों का अभाव भी लोगों को अपराध की ओर संलिप्त करने का एक मुख्य कारण व घटक माना जा सकता है।

यद्यपि अपराधों के बारे में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं तो भी इनके प्रकारों के विषय में जानना आवश्यक हो जाता है। पुलिस बल में तैनात पुलिस अफसरों के लिए तो इस बारे में जानकारी रखना और भी आवश्यक है। अपराधों के प्रकार निम्नलिखित हैं :

1. व्यक्ति के विरुद्ध अपराध : इससे तात्पर्य उन अपराधों से है जो व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुंचाने के लिए किया जाता है भले ही वह पुरुष हो अथवा स्त्री/व्यक्ति के विरुद्ध अपराधों में चोट, हत्या, बलात्कार, अप्राकृतिक अपराध, आत्महत्या के लिए उत्प्रेरिक करना, मानहानि, डकैती, लूटपाट, दहेज-हेतु हत्या व मानसिक कष्ट पहुंचाना आदि अपराध शामिल हैं।

2. संपत्ति के विरुद्ध अपराध : जो अपराध किसी वस्तु या संपत्ति से संबंधित होते हैं, उन्हें संपत्ति के विरुद्ध अपराध कहा जाता है इसके अंतर्गत चोरी, लूट, बलपूर्वक चोरी, डकैती तथा सेंधमारी से संबंधित अपराध आते हैं।

3. राज्य के विरुद्ध अपराध : जब कोई व्यक्ति ऐसा अपराध करता है जिसका संबंध केंद्रीय सरकार या राज्य-सरकारों को प्रभावित करने से होता है, उन्हें राज्यों के विरुद्ध अपराध कहा जाता है जैसे : राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ना, षड्यंत्र रचना, जासूसी व जालसाजी करना, सिक्के बनाना व उनका प्रचलन करना, जाली नोट छापना आदि।

4. सार्वजनिक न्याय के विरुद्ध अपराध : सार्वजनिक न्याय से तात्पर्य उस अपराधों से हैं जो आम जनता को सामाजिक न्याय प्राप्ति में बाधा डालते हैं और यह झूठे साक्ष्यों पर आधारित होता है उदाहरणार्थ : झूठी शहादत देना, बनाना व गढ़ना, झूठे साक्ष्यों का प्रयोग यह जानते हुए करना कि यह झूठे हैं, साक्ष्यों को नष्ट करना, अपराधियों को शरण देना ऐसे ही उदाहरण है जो कि सार्वजनिक न्याय को प्रभावित करते हैं।

5. लोकमर्यादा के विरुद्ध अपराध : इसके अंतर्गत अवैध समूह या अवैधानिक भीड़, भीख मांगना, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, मादक–द्रव्य-सेवन तथा जुआ खेलना भी शामिल हैं।

6. आर्थिक अपराध : आर्थिक अपराधों को सफेदपोश अपराधों के नाम से भी जाना जाता है। अधिकांश व्यक्तियों के अपराध करने का कारण अर्थ अर्थात् धन ही होता है। पैसा और अधिक पैसा पाने की लालसा ही व्यक्ति को अपराध करने के लिए प्रत्यक्षतः प्रेरित करती है। क्योंकि आजकल पैसा ही सब कुछ समझा जाने लगा है। कहा भी तो गया है कि : "बाप बड़ा न भैया! भैया! सबसे बड़ा रुपैया!" आजकल पैसे

से ही संपूर्ण आवश्यकताएं पूर्ण की जानी संभव हैं। आर्थिक अपराधों में, गबन में, कर चोरी, खाद्य-पदार्थों में मिलावट, दवाइयों तथा अन्य वस्तुओं में मिलावट, काला-बाजारी, जमाखोरी, चुनाव संबंधित अपराध, कंप्यूटर चोरियां, शरीर के अंगों की चोरी, लोक-सेवकों द्वारा भ्रष्टाचार, डाक्टरों द्वारा प्राइवेट प्रैक्टिस करना जो कि सरकारी अस्पतालों में पहले ही नौकरियां कर रहे होते हैं, स्मगलिंग करना, लाटरियां आदि चलाना भी शामिल हैं।

7. तटस्थ अपराध : तटस्थ अपराध वे हैं जिनमें से प्रमुख अपराध भीख-मांगना, समलैंगिकता व वेश्यावृत्ति हैं।

आजकल तो देखने में यह भी आता है बाहर से प्रशिक्षण व हथियारों सहित अपराधियों को तैयार करके भारत में भेजा जाता है। इस प्रकार से प्रशिक्षित अपराधी ज्यादा चुस्त, चालाक व प्रभावशाली सिद्ध होते हैं तथा सरकार के समक्ष कानून-व्यवस्था को भंग करके अस्थिरता उत्पन्न करते हैं।

8. विदेशी सहायता : विदेशी सहायता की प्राप्ति किसी भी राष्ट्र की शांति-व्यवस्था व एकता-अखंडता के प्रति खतरनाक साबित होती है। यह सहायता धन, हथियार, आधुनिक उपकरणों तथा सुविधाओं के रूप में हो सकती है। इसके अलावा प्रशिक्षण प्रदान करना भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अपराधियों को विदेशी सहायता मिलने से पुलिस इस प्रकार की गतिविधियों में संलिप्त व्यक्तियों को सुगमता से ढूँढ नहीं पाती।

श्वेतपोश अपराध एवं पुलिस की भूमिका

अर्थ एवं परिभाषा : जिस प्रकार से बाल-अपराध व्यक्तिगत विचलित व्यवहार का एक विशिष्ट रूप है, उसी प्रकार श्वेतपोश अपराध सामूहिक विचलित व्यवहार का एक विशिष्ट रूप है। बाल-अपराध करने वाले व्यक्ति इतने कुशल व प्रभावशाली नहीं होते जितने कि श्वेतपोश अपराध करने वाले व्यक्ति। ये अपराधी अपना कार्य इतनी कुशलता व व्यावसायिकता के साथ करते हैं कि आम आदमी इनको पहचानने में अक्सर धोखा खा बैठते हैं क्योंकि ये अपराध को एक व्यवसाय मानकर चलते हैं।

श्वेतपोश अपराध की उत्पत्ति सन् 1939 ई. में डा. सदरलैंड द्वारा की गई थी। सदरलैंड का मानना था कि श्वेतपोश अपराध करने के लिए धन की अधिक आवश्यकता होती है इसलिए यह प्रायः समाज के संपन्न और इज्जतदार लोगों द्वारा ही किया जाता है। उनके अनुसार, "श्वेतपोश अपराध से तात्पर्य उस अपराध से है, जो प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा अपनी व्यावसायिक गतिविधियां एवं क्रियाकलापों के दौरान कानूनों का उल्लंघन करके किया जाता है।

श्वेतपोश अपराधों के संबंध में प्रो. सदरलैंड द्वारा दी गई यह परिभाषा उपयुक्त व सटीक प्रतीत होती है –क्योंकि श्वेतपोश अपराध करना एक गरीब व आम आदमी के बस की बात नहीं है।

इस प्रकार से निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि जब कोई प्रतिष्ठित एवं सामाजिक रूप में प्रभावशाली व्यक्ति अपने व्यावसायिक कार्यों के दौरान कानूनों का उल्लंघन करता है तो उसके द्वारा किए गए कार्य को श्वेतपोश अपराध कहा जाता है।

श्वेतपोश अपराध की विशेषताएं

डा. सदरलैंड के अनुसार श्वेतपोश अपराध की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. श्वेतपोश अपराध प्रायः समाज के प्रतिष्ठित व प्रतिभाशाली वर्ग के व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है।

2. अधिकतर श्वेतपोश अपराध आर्थिक लाभ हेतु किए जाते हैं और ये अपराध व्यावसायिक कार्यों के दौरान ही किए जाते हैं।

3. श्वेतपोश अपराध पर्दे के पीछे रहकर ही किए

जाते हैं क्योंकि ये विश्वासघात पर ही आधारित होते हैं।

4. श्वेतपोश अपराध करने वाले व्यक्ति अपराध का कोई भी प्रभाव नहीं छोड़ते क्योंकि वे बेहद चुस्त, चालाक व बुद्धिमान होते हैं।

5. श्वेतपोश अपराध समाज पर अप्रत्यक्ष व गहन प्रभाव डालते हैं क्योंकि वे समाज के लिए अन्य अपराधों की बजाए अधिक हानिकारक होते हैं।

6. श्वेतपोश अपराध समय, स्थान व कानूनों की विविधता पर आधारित होते हैं।

7. श्वेतपोश अपराध कानूनों का खुला उल्लंघन करते हैं क्योंकि जनता इनसे अनभिज्ञ होती है।

श्वेतपोश अपराधों के प्रकार

श्वेतपोश अपराध विभिन्न प्रकार के होते हैं क्योंकि श्वेतपोश अपराध भी समय, स्थान व परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। भारतवर्ष में भी श्वेतपोश अपराध दूसरे देशों की तुलना में कम नहीं है। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :

1. व्यापार में छल-कपट : अधिकतर व्यापारी अपने आर्थिक लाभ के लिए अनेक प्रकार के कानूनों का उल्लंघन करते हैं। व्यापारियों द्वारा किए जाने वाले अपराधों में अधिकतर टैक्सों में चोरी, खाद्य पदार्थों में मिलावट, झूठा दिवाला दिखाना, जमाखोरी, वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न करना, झूठी कंपनियां खोलना, झूठे विज्ञापन देना, झूठे बीमे करवाना और बोगस बिल तैयार करना भी सम्मिलित हैं।

चिकित्सा व्यवसाय में कार्यरत डाक्टर व अन्य व्यक्ति चिकित्सा व्यवसाय उल्लंघन व मर्यादाओं तथा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करते आसानी से देखे जा सकते हैं। डाक्टर ड्यूटी के दौरान मरीजों की सेवा की उपेक्षा करके उनको दिए जाने वाला समय अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस को देते हैं जिससे उन्हें भारी आर्थिक लाभ की आशा होती है। सरकारी अस्पतालों में दवाईयां होते हुए भी दवाएं नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त दवाईयां बेचने वाली कुछ फर्मों के द्वारा नकली दवाएं तैयार करके बेची जाती हैं। चिकित्सा व्यवसाय का उल्लंघन करने, अल्कोहल व नशीले पदार्थों की अवैध ब्रिकी, अवैध गर्भपात, अपराधियों का छिपकर इलाज करना, जाली विशेषज्ञता हासिल करना और प्रशासन द्वारा मरीजों को दी गई सुविधाओं का दुरुपयोग करना इत्यादि शामिल हैं। ये सभी श्वेतपोश अपराध की ही श्रेणी में आते हैं।

खाद्य-पदार्थों में मिलावट : अधिकांश व्यापारी वर्ग खाद्य-पदार्थों में मिलावट करते हैं, जिसके फलस्वरूप मानव अनेक बीमारियों का शिकार हो जाता हैं। ये एक तरफ खाद्य-पदार्थों में मिलावट करते हैं जबकि दूसरी ओर इसकी चोरी करते हैं जिससे राष्ट्र को काफी नुकसान पहुंचता है। यही नहीं, वस्तुओं का कृत्रिम अभाव पैदा करके कीमतों में वृद्धि कर दी जाती है जिससे महंगाई का और मूल्य का सूचकांक बढ़ जाते हैं, परिणामस्वरूप व्यक्ति व समाज दोनों पर ही इसका कुप्रभाव पड़ता है।

वकीलों द्वारा कानूनों की अवमानना तथा उल्लंघन : कुछ एक वकील ऐसे भी हैं जो कि अपने पेशे के दौरान श्वेतपोश अपराध करते हैं। वकीलों द्वारा किए जाने वाले अपराधों में अधिकतर झूठी गवाही दिलवाना, झूठे दावे करना, विरोधी पार्टी से पैसे खाकर मुकद्दमे की उचित पैरवी न करना, न्यायाधीशों के नाम पर रिश्वत लेना, जाली डिग्री हासिल करके वकालत करना, झूठे दस्तावेज जैसे जमानत पत्र आदि तैयार करना शामिल हैं। अधिकतर वकील झूठे साक्ष्यों को तोड़मरोड़कर इस प्रकार प्रस्तुत करने में माहिर होते हैं कि सही साक्ष्य साबित ही न हो पाएं और अपराधी को संदेह का लाभ मिल जाए और वह बरी हो जाए। वकील अपराधियों को न केवल कानूनी सहायता एवं मार्ग दर्शन प्रदान करते हैं बल्कि उन्हें संरक्षण भी प्रदान करते हैं। हरियाणा के रोहतक जिले में एक अद्‌भुत घटना घटी जो श्वेतपोश अपराध का एक ताजा उदाहरण है। एक वकील जो

जिला सेशन न्यायालय में प्रैक्टिस करता था वह अधिकतर आपराधिक केसों की ही वकालत किया करता था और अपने ग्राहकों को तुरंत जमानत पर छुड़वा देता था। उसने लगभग चालीस अपराधियों को इसी तरह जमानत पर छुड़वाया। वह उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए जाली जमानत-पत्र अपने घर पर ही तैयार करता था। एक मजिस्ट्रेट को उस पर शक हो गया, उसने तुरंत रजिस्ट्रार व उच्च-न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से संपर्क स्थापित किया और इस विषय में जानकारी हासिल करनी चाही। वकील द्वारा प्रस्तुत किए गए जमानत-पत्र जाली थे। उच्च-न्यायालय ने पुष्टि हेतु जब अगले दिन भी गतिविधियों पर दृष्टि डाली तो वह वकील अगले दिन भी न्यायालय में एक ग्राहक की जमानत करवाने पहुंचा हुआ था। उसे वहीं गिरफ्तार कर लिया गया और अब उस पर 40 केसों की झूठी जमानत का केस चल रहा है। इस प्रकार वकील भी अपने पेशे की मर्यादाओं को छोड़कर श्वेतपोश अपराध में संलिप्त देखे जा सकते हैं, जो कि एक अशोचनीय स्थिति है।

लोकसेवकों द्वारा रिश्वत लेना : यद्यपि लोकसेवकों के लिए रिश्वत लेना एक कानूनी अपराध है तो भी लोग अपनी-अपनी जेबें भरने में लगे ही रहते हैं। हमारा देश भी इससे अछूता नहीं है। यहां पर भी भ्रष्टाचार की जड़ें फल-फूल रही हैं। लोकसेवकों द्वारा सरकारी कार्यों के बदले में धन, पारितोषिक लेना या कोई कीमती वस्तु कम मूल्य पर हासिल करना, श्वेतपोश अपराधों की ही श्रेणी में ही आता है और अपराध का ही एक विशिष्ट रूप है। उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त भी श्वेतपोश अपराध के अनेक रूप हैं जिनमें मुख्यतः सरकारी लॉटरी, रेडक्रास मेले, सट्टा और इसी तरह के कई अन्य अपराध श्वेतपोश अपराधों से अछूते नहीं है।

श्वेतपोश अपराधों के कारण

श्वेतपोश अपराध के कई कारण हैं जिनमें से कुछेक महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं :

व्यक्तिगत स्वार्थ या आर्थिक लालच : तीव्र औद्योगीकरण एवं पूंजीवाद ने माननीय जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। पूंजीवाद से न केवल व्यक्तिवाद की धारण को बल मिलता है, अपितु आर्थिक लालच या व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना की धारणा भी फलीभूत होती है। व्यक्तिगत स्वार्थ को ध्यान में रखकर ही किए जाते हैं।

जन-जागरण, जन-जागृति का अभाव : यद्यपि सरकार जनता को जागरूक बनाने के अनेकानेक प्रयास समय-समय पर करती ही रहती है, परंतु जन-जागरण के अभाव में श्वेतपोश अपराध बेरोकटोक पलते व बढ़ते ही रहते हैं। जनता सभी पर सहज ही विश्वास कर लेती है जबकि उसे यह आभास तक नहीं होता कि परोक्ष रूप से उनका शोषण ही किया जा रहा है। अतः जन-साधारण जागरूकता के अभाव में इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठा पाते।

कानूनी जानकारी का अभाव व अनभिज्ञता : अधिकतर जनता कानूनी दांव-पेचों से अनभिज्ञ होती है, कानून की अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने में सर्वसाधारण जनता अपना योगदान नहीं दे पाती। इसलिए भी श्वेतपोश अपराधों को बढ़ावा मिलता है। उदाहरणार्थ : उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता को खराब वस्तुओं को बदलवाने का अधिकार है परंतु अधिकतर उपभोक्ता कानून के प्रति कोई अधिक जानकारी नहीं रखते, परिणामस्वरूप वे इन दुकानदारों द्वारा ठगे जाते हैं और श्वेतपोश अपराधों की संख्या में उत्तरोतर वृद्धि होती जा रही है।

अदालती झंझटों से दूर रहने की प्रवृत्ति : प्रायः पीड़ित व्यक्ति पुलिस व न्यायालय के झंझटों से बचकर रहना चाहते हैं। पीड़ित व्यक्ति साधन संपन्न न होने के कारण अपराधी को सजा नहीं दिलवा पाते, दूसरे बदनामी से बचने के लिए पीड़ित व्यक्ति अपराध की पीड़ा का कड़वा घूंट पी कर संतोष कर लेते हैं। फलस्वरूप वे

अदालत से बाहर ही समझौता कर लेते हैं, चाहे उन्हें आर्थिक हानि क्यों न उठानी पड़े। इस प्रकार श्वेतपोश अपराधों को बढ़ावा मिलता है।

न्यायालयों द्वारा नरम रवैया अपनाया जाना : अधिकतर श्वेतपोश अपराधी आपराधिक न्याय प्रणाली में पहुंच रखते हैं— फलस्वरूप, न्यायालय व पुलिस इनके प्रति अपना रूख व रवैया नरमी-भरा ही रखती हैं। दूसरे, तुच्छ अपराध समझकर उन्हें यों ही छोड़ दिया जाता है या थोड़ा बहुत ही जुर्माना करके छोड़ दिया जाता है, जिससे अपराध कम होने की बजाए बढ़ते हैं। कई बार यही अपराधी चुनावों में जीतकर विधायक बन जाते हैं जो अपने पद का भरपूर दुरूपयोग करके श्वेतपोश अपराधों को फलने-फूलने का अवसर प्रदान करते हैं।

गोपनीयता : श्वेतपोश अपराध सदैव गोपनीयता रखते हुए भी किए जाते हैं इसलिए इसे पर्दे के पीछे किए जाने वाला अपराध कहा जाता है। अपराध करते समय गोपनीयता बरतने के कारण इनका पता नहीं लग पाता है, यहां तक कि संचार-माध्यम भी इनके बारे में खबरें कम ही छापते हैं इसलिए इस प्रकार के अपराध निरंतर बढ़ ही रहे हैं।

उच्च स्थान की प्राप्ति : अधिकतर श्वेतपोश अपराधी अप्रत्याशित रूप से अपनी अंधी महत्वकांक्षा का शिकार होते हैं। वे अपने शीर्ष स्थान पर देखना चाहते हैं। इसी संघर्ष में वे श्वेतपोश अपराधों का सहारा लेकर आगे बढ़ते रहते हैं।

पूंजीवाद एवं औद्योगीकरण : पूंजीवाद व औद्योगीकरण के जहां अनेक लाभ हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक समस्याओं को भी जन्म दिया है। व्यक्तिवाद, स्वार्थवाद, भौतिकवाद, गंदी-बस्तियां झुग्गी-झोपड़ियां पूंजीवाद और औद्योगीकरण की ही देन हैं। श्वेतपोश अपराध भी कुछ हद तक इन्हीं की ही देन हैं।

जनता की सहानुभूति : अधिकतर श्वेतपोश प्रतिष्ठित होने के कारण जनता की सहानुभूति हासिल करने में कामयाब हो जाते हैं। जैसे राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक व धार्मिक नेता जन-सेवा कार्यों में लगे होने के कारण लोग इनकी बातों पर सहज ही विश्वास कर लेते हैं व जनता की सहानुभूति अर्जित कर लेते हैं। यदि इन पर कोई आरोप लगाया भी जाता हैं तो इनके समर्थक धरना देकर छुड़ा ले जाते हैं। इस प्रकार श्वेतपोश अपराध निर्बाध रूप से होते रहते हैं।

जिस देश की पुलिस, तत्परता और निष्पक्षता से कार्य करती हो, कर्तव्यों का पालन परिश्रम और ईमानदारी से करती हो और अपराध व अपराधियों से सख्ती से निपटती हो तो कोई वजह नहीं है कि अपराधों में वृद्धि हो। परंतु यदि व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो ये बातें पुस्तकों व फिल्मों में ही देखने को मिलती हैं जबकि वास्तविक जीवन में ऐसा कम ही दृष्टिगोचर होता है। परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि पुलिस चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहती है। पुलिस की भी अपनी कुछ सीमाएं, कठिनाइयां व परेशानियां हो सकती हैं। जब पुलिस को किसी अपराध के बारे में सूचना मिलती है तो घटनास्थल पर पहुंचने से पूर्व कुछ मूलभूत आवश्यक औपचारिकताओं को भी पूरा करना पड़ता है क्योंकि जब तक ये औपचारिकताएं पूरी नहीं होंगी, अपराधी को दंडित नहीं करवाया जा सकेगा। दूसरे श्वेतपोश अपराधी अपराध करने के पश्चात कोई सबूत नहीं छोड़ते, इसलिए इनके विरुद्ध प्रमाण एकत्रित करना काफी मुश्किल होता है क्योंकि सबूत के अभाव में वे अदालत से बरी कर दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई लोकसेवक भ्रष्ट आचरण का आदी है जब उसके बारे में कोई सूचना मिलती है कि अमुक लोकसेवक रिश्वत मांग रहा है तो उसके विरुद्ध गवाह तैयार करना, अदालत से गिरफ्तारी का वारंट लेना व अन्य कार्रवाई करने के बाद ही उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकेगी। कहने का भाव यह है कि उपरोक्त औपचारिकताएं पूरी करने के बाद ही उसे गिरफ्तार किया जा सकेगा।

यदि श्वेतपोश अपराधों को रोकना है तो निम्नलिखित उपायों को भी ध्यान में रखते हुए कार्रवाई करते रहना चाहिए :

1. पुलिस का प्रथम कार्य यही है कि श्वेतपोश अपराधों के बारे में अधिकारिक जानकारी हासिल करने के लिए अच्छे व मजबूत मुखबिर तैयार करें जो सही सूचनाएं प्रदान करें ताकि इनका पता लगाकर इनकी रोकथाम की जा सके।

2. सरकार को चाहिए कि वह इनके विरुद्ध सख्त कानून बनाए और उनको लागू करवाए जबकि पुलिस का कर्तव्य है कि जनता का सहयोग प्राप्त करते हुए इन कानूनों को सख्ती से लागू कर सके।

3. किसी भी अपराधी को गिरफ्तार करने से पूर्व सभी आवश्यक औपचारिकताएं तुरंत बिना किसी विलंब के पूरी करे ताकि अपराधी रंगे हाथों गिरफ्तार किया जा सके और दोषी को दंडित किया जा सके।

4. पुलिस को चाहिए कि वह जनता की भरपूर सहायता व सहयोग करे ताकि जनता भी समय आने पर पुलिस को अपना सहयोग व सहायता दे सके और जनता का विश्वास पुलिस में बना रहे तभी पुलिस भी अपना कार्य सुचारू रूप से और सरलतापूर्वक कर पाएगी।

5. पुलिस को संभावित क्षेत्रों में गश्त लगाते रहना चाहिए और अपराध को समूल नष्ट करने तथा अपराधियों को सजा दिलाने में कोताही नहीं बरतनी चाहिए।

6. पुलिस को निजी स्वार्थ की भावना को त्यागकर सार्वजनिक हित के लिए कानून-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए परिश्रम, ईमानदारी और निष्पक्षता से कार्य करना चाहिए और न्यायालय को चाहिए कि दोषी व्यक्तियों के प्रति कठोर रवैया अपनाए ताकि इनकी रोकथाम प्रभावी ढंग से की जा सके।

वस्तुतः पुलिस व जनसाधारण का सहयोग प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित है ही। यदि हम यह संकल्प कर लें कि अपराधियों को समूल नष्ट करना है और भारत को एक स्वस्थ, उज्जवल व कल्याणकारी भोर प्रदान करनी है तो कोई कारण नहीं कि हम उसे अपने दृढ़-संकल्प-शक्ति सजगता और प्रणशीलता से न कर पाएं। कोई भी कार्य कदापि असंभव नहीं होता, चाहिए एक उत्साह, लगन और अपने लक्ष्य तक पहुंच पाने की अदम्य लालसा।

❑

मानवाधिकार संरक्षण और पुलिस

डा. के.पी.सिंह

विभागाध्यक्ष, समाज शास्त्र विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सुरेंद्र भास्कर

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में मानवाधिकार व पुलिस दोनों की बराबर अहमीयत व दरकार रहती है। मानवाधिकार शब्द का अर्थ मुनष्य के मूल अधिकारों से है जिनकी उसे सामान्य जिंदगी गुजारने के लिए आवश्यकता है। मानवाधिकार में अधिकार का अर्थ स्वतंत्रता से है। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति में निहित हैं। इनके अभाव में मनुष्य अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। इन अधिकारों से मनुष्य के मानवीय गुणों वे प्रतिभाओं को विकसित किया जा सकता है और इनके संरक्षण के लिए पुलिस की स्थापना की गई है।

परिभाषा

मानवाधिकार मौलिक अधिकार, मूल अधिकार प्राकृतिक अधिकारों के नाम से ही जाने जाते हैं। इन अधिकारों की रचना नहीं की जाती है, बल्कि इनकी स्थिति स्वाभाविक होती है। ये अधिकार मानव जीवन की न्यून आवश्यकताएं हैं जिनके बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हैराल्ड लास्की ने अधिकार को परिभाषित करते हुए लिखा है "अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।"

मानवाधिकार लेखक जैक डोल्नलि के अनुसार, "मानवाधिकार शाब्दिक रूप से वे अधिकार हैं जो व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। मानवाधिकार भौगोलिक रूप से समान और अहस्तांतरीय होते हैं।"

भारतीय मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अनुसार मानव अधिकारों का तात्पर्य उन अधिकारों से हैं जो जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा से संबंधित हैं और जिनकी संविधान द्वारा गारंटी दी गई है। इन्हें अंतर्राष्ट्रीय संविदाओं में शामिल किया गया है और उनके न्यायालयों के द्वारा लागू भी किया जा सकता है।

इस प्रकार मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मानव होने के नाते निश्चित रूप से उसे मिलने चाहिए जिनके अभाव में उसका सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। संक्षेप में मानवाधिकारों को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है मानवाधिकार समाज के सभी सदस्यों के जीवन के उच्चतम विकास हेतु आवश्यक व सामान्य या न्यूनतम परिस्थितियां हैं जिन्हें समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करने की व्यवस्था करता है।

मानवाधिकारों का इतिहास

मानवाधिकारों को एतिहासिक संदर्भ में देखा जाए तो बेबीलोनियन नियमों, बेबीलोन के हम्मुराबी (1792-1750 ई. पू.) व अरस्तु के न्याय सिद्धांत में इनका उल्लेख मिलता है। भारतीय संस्कृति भी सदैव मानवाधिकारों की पोषक रही है। वैदिक साहित्य की 'सर्वे भवंतु सुखिनः' जैसी कई ऋचाएं मानवाधिकारों की पृष्टि करती है। ऋग्वेद का निम्न श्लोक भी मानवाधिकारों की अनुभूति देता है—

"अहवर्य जिवातु भेषग्म सम्नों अस्ति द्विपते
सम चतुष्पदै! ओम शांति, शांति, शांति"

इस श्लोक में मानव, जीव-जंतु को वनस्पति के फलने-फूलने की बात कही गई है जिससे लोगों के मध्य परस्पर सद्भाव बना रहे व चारों ओर शांति कायम हो।

आदिम युग में मानव स्वतंत्र था और प्रकृति में स्वच्छंद रूप से विचरण करता था। धीरे-धीरे वह संगठित रहने लगा और इसके लिए उसको एक व्यवस्था की जरूरत होने लगी। आगे जाकर इस व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए मनुष्य ही मनुष्य के अधिकारों का हनन करने लगा। यह व्यवस्था विभिन्न युगों में गुजरती हुई आधुनिक समाज में देखी जाने लगी। लोक कल्याणकारी राज्य लोगों के अधिकारों की समुचित व्यवस्था करते थे वही कई फॉसिस्ट व वामपंथी विचारधाराओं वाले देशों में ये अधिकार एक कोरी कल्पना थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध व नाजियों के शासनकाल में मनुष्य पर काफी ज्यादा अत्याचार देखने को मिले। उसी दौरान मानवीय मूल्यों की स्थापना व अंतर्राष्ट्रीय शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए मनुष्य के अधिकारों के संबंध में आवाज उठने लगी। 16 जनवरी, 1941 को तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलीन डी. रूजवेल्ट ने पहली बार मानवाधिकार शब्द का इस्तेमाल करते हुए घोषणा की कि मानव की स्वतंत्रता अधिकार संपन्न होनी चाहिए और हमारा समर्थन उन्हीं को है, जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

1 जनवरी, 1942 को वाशिंगटन में विश्व की चार महाशक्तियों (यू.के., यू.एस.ए., यू.एस.एस.आर. और चीन) व 22 राज्यों ने 1941 के अटलांटिक चार्टर में आस्था दिखाते हुए मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में संयुक्त राष्ट्र चार्टर की घोषणा की। 10 दिसम्बर, 1948 को मानवाधिकारों के संरक्षण के दिशा में इनकी सार्वभौमिक घोषणा की गई। सन् 1950 में यू.एन.ओ. की महासभा में प्रस्ताव पारित कर 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मनाने का निश्चय किया गया।

मानवाधिकारों का उद्देश्य

जैसा की मानवाधिकार शब्द से विदित है कि मानव अधिकार मनुष्य के अपने मौलिक अधिकार हैं। मानवाधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं जो व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी होने के नाते आवश्यक रूप से मिलने चाहिए जिससे की वह अपना अस्तित्व वे गरिमा को बनाए रखते हुए सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सके।

मानवाधिकार किसी भी सभ्य समाज के विकास का मूल आधार होते हैं। मानवाधिकार संरक्षण की प्रस्तावना में बताया गया है कि मानव समाज के सभी सदस्यों की जन्मजात प्रतिष्ठा तथा अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्व शांति, न्याय और स्वतंत्रता की बुनियाद है। इस व्यवस्था से लोगों को भय व अभाव से मुक्ति मिलेगी और सर्वसाधारण को अभिव्यक्ति व धर्म की स्वतंत्रता प्रदान होगी।

मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद हैं और इन अनुच्छेदों को मानवता का मेग्नाकार्टा कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों को चार रूपों-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक में प्रस्तुत किया है। मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा के अनुच्छेद 1 और 2 में कहा गया है कि सभी मनुष्य समान अधिकार और सम्मान लेकर पैदा होते हैं। अतः सभी व्यक्ति जाति, रंग, भाषा, लिंग, धर्म, संपति व राजनीति के सभी अधिकारों व स्वतंत्रता के हकदार हैं। अनुच्छेद 3 से 21 में राजनीतिक व नागरिक अधिकारों की घोषणा की गई है। वहीं अनुच्छेद 22 से 27 तक सामाजिक, अर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है। अतः इन अनुच्छेदों में वर्णित उपरोक्त सभी मानवाधिकारों की प्राप्ति की समुचित व्यवस्था पाने का अधिकार हर व्यक्ति को दिया गया है।

मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा के सफलतापूर्ण बीस वर्ष पूर्ण करने पर वर्ष 1968 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार वर्ष घोषित किया। तेहरान में हुए अपने सम्मेलन में इसके प्रभावों का मूल्यांकन किया गया जिसको तेहरान घोषणा के रूप में घोषित किया गया। 1993 में द्वितीय विश्व मानवाधिकार सम्मेलन वियना

में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में मानवाधिकारों के संरक्षण को संबंधित देश की सरकारों की 'प्रथम जिम्मेदारी' के रूप में व्यक्त किया गया। सरकार में इस कार्य को मॉनिटर करने के लिए विभिन्न मानवाधिकार संगठन बनाए गए हैं। इनमें **एमनेस्टी इंटरनेशलन** मुख्य है। इसकी शुरूआत 1961 में की गई। इस संगठन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सलाहकारी दर्जा प्राप्त है।

भारत में मानवाधिकार

अपने देश में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) की विधिवत् रूप में स्थापना 27 सितम्बर 1993 को की गई जो मानवाधिकार संरक्षण विधेयक 1993 के नाम से जाना जाता है। तत्पश्चात् विभिन्न राज्यों में भी इसका गठन किया गया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में एक अध्यक्ष व सात सदस्य पांच वर्ष के लिए मनोनित किए जाते हैं। अध्यक्ष का चुनाव सर्वोच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों में से किसी एक का किया जाता है। आयोग का ऑफिस नई दिल्ली में स्थित है।

पुलिस

पुलिस भी समाज के लिए उतनी आवश्यक है जितने कि मानवाधिकार। समाज में शांति स्थापित करने, लोगों की सुरक्षा, शोषण से बचाव, सहयोग करने की जिम्मेदारी पुलिस की है। पुलिस के बिना किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

पुलिस का इतिहास भी मानव सभ्यता की तरह काफी प्राचीन है। ऋग्वेद में पुलिस की जिवागिम्र व उपनिषदों में 'उग्र' नाम से पुकारा गया है। पुलिस व्यवस्था का वर्णन हर काल में मिलता है।

परिभाषा

पुलिस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'पोलिस' शब्द हुई है जिसका अर्थ ऐसी व्यवस्था से है जो कानून के क्रियान्वयन तथा शांति व्यवस्था को बनाए रखती है। सदरलैंड ने पुलिस को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "पुलिस शब्द प्राथमिक रूप से राज्य के उन प्रतिनिधियों से संबंधित है जिनका कार्य विधि व्यवस्था को बनाए रखना और अधिनियमित दंडविधि को प्रवर्तित करना है।"[2]

इस प्रकार पुलिस अपराध नियंत्रण व समाज में कानूनी व्यवस्था बनाए रखने और समाज को स्थायित्व प्रदान करने के लिए लोगों के मध्य सहभाव पैदा करने का एक तंत्र है।

मानवाधिकार एवं पुलिस

मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों से है जिनकी बदौलत उसका विकास संभव है। मानवाधिकारों के संरक्षण की जिम्मेदारी सरकार की है। आधुनिक युग में एक आदर्श राज्य की कल्पना करना बेमानी होगी क्योंकि आजकल मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन बनता जा रहा है। समाज में कुछ अवांछित तत्व शामिल हो गए हैं जो लोगों के अधिकार हनन करने में लगे हैं। इन अवांछित तत्वों-दहशतगर्दो, बदमाशों आदि को ठिकाने लगाना पुलिस का काम है। मानवाधिकारों की रक्षा में पुलिस बहुत हद तक निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती है। पुलिस अपराधियों को पकड़ कर और ईमानदारी से जांच पड़ताल करके मानव अधिकारों के हनन की क्षतिपूर्ति करती है। पुलिस की इसी मूलभूत प्रवृति के कारण इसे समाज में मानवाधिकारों के संवाहक एवं संरक्षक के रूप में स्वीकृति मिली हुई है।

वर्तमान मे विभिन्न सामाजिक विषमताओं व जटिलताओं के फलस्वरूप पुलिस का कार्य बढ़ता ही जा रहा है। कानूनी व्यवस्था के साथ पुलिस को ट्रैफिक, विषम परिस्थितियों में जन सहयोग और शांति व सद्भावना जैसे अनेक कर्तव्य निभाने पड़ते हैं। पुलिस व समाज एक दूसरे की सहयोगी इकाईयां हैं और अपने लक्ष्यों की

प्राप्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। पुलिस का समाज के विभिन्न सदस्यों से फरियादी-मुल्जिम, गवाह-मुखबीर और सहयोगी के रूप में लगातार संपर्क चलता रहता है। इतना सब करने के पश्चात् भी पुलिस को मानवाधिकारों की अवहेलना संबंधी आलोचना का शिकार होना पड़ता है।

पुलिस को अपराध नियंत्रण व समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखने, अपराधियों पर नज़र रखनी पड़ती है। अपने इस कार्य के निष्पादन के लिए उन्हें पूछताछ व हिरासत का भी सहारा लेना पड़ता है। इस प्रक्रिया में लाजमी है कभी निर्दोष व्यक्ति भी शक के दायरे में आकर पुलिस की भेंट चढ़ सकता है। यही से मानवाधिकार संगठन और पुलिस के मध्य आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो जाता है।

अक्सर कहा जाता है कि पुलिस दयनीय रूप से कार्य करती है। चूंकि पुलिस के नियम काफी पुराने हैं उस जमाने में व्यक्ति न तो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक था न ही उसे उतनी स्वतंत्रता प्राप्त थी। अंग्रेजी राज में गठित पुलिस सेवा, सेवा के स्थान पर बल का प्रयोग ज्यादा करती है। आम तौर पर माना जाता है कि अंग्रेजों ने पुलिस बल पैदा किया है न कि पुलिस सेवा।

भारत में पुलिस व्यवस्था को आधुनिक और व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय वारेन हेस्टिंग्स (1772-1785) को जाता है। सन् 1829 में मैट्रोपोलिटन पुलिस के कुछ ऐसे सिद्धांत बनाए गए थे जिसमें यह निर्देश थे, जिनमे लगे की पुलिस ही जनता है और जनता ही पुलिस है। लेकिन इसका ज्यादा फायदा इसलिए नहीं हुआ कि यह पुलिस देश के छोटे से भाग ही में कार्यरत थी। 1860 में प्रथम पुलिस आयोग का गठन हुआ और इसकी अनुशंसाओं के पश्चात भारतीय पुलिस अधिनियम 1861 पारित किया गया।

आजादी के बाद भारतीय पुलिस की कार्य प्रणाली में काफी बदलाव आया है। न्यूनाधिक मात्रा में आज की पुलिस भी 1861 में गठित पुलिस कानून पर आधारित है। इसके कई अधिनियम व निर्देश समय के साथ बदले भी हैं जो काफी उदार हैं परंतु मूलभाव उन्हीं पुराने अधिनियमों से लिए गए हैं जो आज भी मानवाधिकार संगठनों के गले नहीं उतर रहे हैं।

पुलिस पर अक्सर मानवाधिकार के हनन के आरोप लगाए जाते हैं। आज आम आदमी की यह शिकायत है कि पुलिस का उनके साथ व्यवहार उचित नहीं है। पुलिस हिरासत में अभियुक्तों की प्रताड़ना उनके साथ अमानवीय व क्रूरतापूर्ण व्यवहार भीड़ आदि को नियंत्रित करने में आवश्यकता से अधिक बल प्रयोग, निर्दोष व्यक्ति को तंग करना, महिलाओं, बच्चों तथा सामान्य नागरिकों के प्रति पुलिसजनों का दुर्व्यवहार आदि कई घृणित कृत्यों के कारण पुलिस की छवि धूमिल हो रही है।

ऐसे कई उदाहरण अपने सामने आए हैं जिनसे विदित होता है कि पुलिस अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग करते समय निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करती है। हथकड़ी का प्रयोग, थर्ड डिग्री का इस्तेमाल, अभिरक्षा के लिए गए व्यक्तियों की शारीरिक जांच तथा चिकित्सा और हिरासत में लिए गए व्यक्तियों का मानसिक व शारीरिक शोषण व प्रताड़ना आदि अनेक बिंदु हैं जिनको लेकर पुलिस पर नागरिकों के अधिकारों की अवहेलना के आरोप लगते हैं। पुलिस की आम आदमी के साथ तुच्छ भाषा शैली, विलम्ब व पक्षपातपूर्ण रवैया होने के आरोप भी लगते रहे हैं।

पुलिस की बुराई करने वाले यह नहीं समझते की पुलिस का कार्य तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। यदि किसी अपराधी पर नरमी बरत दी जाती है तो उसे मिलीभगत का नाम दिया जाता है वहीं कठोर होने पर दुर्व्यवहार या अत्याचार का नाम दे दिया जाता है। पुलिसकर्मी कोई जान बूझकर मानवाधिकारों की अवहेलना नहीं करते पर आमतौर पर अज्ञानता, असावधानी, अहंकार व संवेदनहीनता के कारण ऐसा अक्सर हो जाता है। पुलिस के तफ्तीशी करने के तरीके

काफी पुराने एवं रूढ़ीवादी हैं। अनुसंधान की नवीन तकनीक के अभाव व समाज और सरकार के दबाव में जल्दी से परिणाम प्राप्त करने की आशा में पुलिस ज्यादातर थर्ड डिग्री तरीकों का इस्तेमाल कर लेती है।

पुलिस की उपर्युक्त कार्रवाई के पीछे का दर्द कोई नहीं समझता है। पुलिस राजनीतिक, सामाजिक दबावों के बीच कार्य करती है। जनसंख्या विकास, शहरीकरण, आर्थिक सुधार, गतिशीलता, आतंकवाद, गरीबी, बेरोजगारी, जातिवाद, नैतिक मूल्यों में गिरावट, व्यक्तिवाद, राजनीतिज्ञों व अपराधियों के गठजोड़, भौतिकवाद, साम्प्रदायिकता, संचार-क्रांति और आर्थिक असमानता जैसे विषयों ने पुलिस के समक्ष विषम चुनौतियां पेश कर दी हैं। इससे पुलिस पर काफी बोझ पड़ने लगा है साथ ही पुलिसकर्मियों पर मानसिक तनाव भी झलकने लगा है। ऐसा बहुत बार देखा गया है कि कार्य के बोझ तले पुलिस अपना दिमागी संतुलन खो बैठती है। पुलिस के इस रवैये के पीछे जनता का भी कम योगदान नहीं है। साधारणतया यह देखा गया है कि पुलिस की जांच पड़ताल के दौरान आम आदमी उनका उचित सहयोग नहीं करता है।

आज के जमाने में पुलिस का कार्य कोई कम चुनौती भरा नहीं रह गया है। विभिन्न राजनीतिक दलों, समाजसेवी संगठनों, जनप्रतिनिधियों व मीडिया की नजर हमेशा पुलिस पर टिकी रहती है। पुलिस की छोटी-सी त्रुटि पर बवाल मचा दिया जाता है। रही कसर मानवाधिकार संगठन बैनर उठाकर पुरी कर देते हैं। जम्मू-कश्मीर, पंजाब व पुर्वोत्तर राज्यों में आतंकवाद से लड़ाई के दौरान पुलिस को हमेशा उग्रवाद के साथ-साथ मानवाधिकार संगठनों से भी लड़ना पड़ा है। मानवाधिकार संगठन कभी पुलिस की पीड़ा नहीं समझते। आखिरकार वे भी इंसान हैं, उनमें भी भावनाएं निवास करती हैं। प्रख्यात पुलिस अधिकारी के.पी.एस. गिल का 'माया' पत्रिका को 30 जून, 1997 को दिया गया यह साक्षात्कार कि मानवाधिकार संगठन एक राजनैतिक मुद्दा अख्तियार कर चुके हैं। ये संगठन एक उद्योग बन गये हैं। अगर किसी आदमी को एक लाख का मुआवजा मिलता है तो उसमें से 70 प्रतिशत मानवाधिकारवादी वकील को देने पड़ते हैं—मानवाधिकार की वर्तमान स्थिति के बारे में काफी कुछ बयान कर देता है। माकपा अध्यक्ष प्रकाश करात ने भी "पीपल्स डेमोक्रेसी" में इन पर ताल ठोकते हुए कहा कि ये महिला संगठन के एजेंट CIA और विदेशी धन प्राप्त करने वाली एजेंसियां हैं।

पुलिस में सुधार

पुलिस को मानवाधिकारों की रक्षा प्रभावी अभिकरण बनाने के लिए सुधारात्मक प्रयास किए जाने जरूरी हैं। इसके लिए सबसे पहले उन्हें प्रशिक्षित कर उनकी सोच व चिंतन में बदलाव लाना जरूरी है। पुलिस के कार्य में व्यापक संजीदगी व मानवता का समावेश बहुत जरूरी है। आधुनिकता के संदर्भ में एक व्यापक, वैज्ञानिक एवं प्रभावी अभियान चलाकर पुलिस की अभिवृतियों, रूझान, कार्य प्रणाली में सुधार लाना जरूरी है। इस अभियान की शुरूआत में पुलिस तंत्र के मनोविज्ञान को समझना पड़ेगा। अक्सर देखा गया है कि लगातार ड्यूटी, राजनैतिक दबाव, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, आर्थिक असहयोग, विभिन्न सुविधाओं की कमी, विश्राम का अभाव और स्थानान्तरण संबंधी कई समस्याओं के चलते व मानसिक तनाव में रहते हैं जो उनके स्वभाव व्यवहार व कार्य को प्रभावित करता है। इसके लिए कोई सराहनीय कदम उठाकर उनके गिरे मनोबल को ऊँचा उठाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

इन सबके अलावा पुलिस कार्य प्रणाली में सुधार के लिए विभिन्न प्रकार के मानवाधिकार संबंधी प्रशिक्षण भी समय-समय पर देना चाहिए। इसी संदर्भ में अक्टूबर 96 को राष्ट्रीय पुलिस अकादमी में एक मानवाधिकार पर सिम्पोजियम आयोजित किया गया जिसमें अनेक समाजशास्त्रियों, न्यायविदों व पुलिस अधिकारियों ने

विभिन्न समस्याओं पर अपनी राय रखी जिसको स्मारिका में शामिल कर विभिन्न प्रशिक्षण केंद्रों पर भेजा गया।

मानवाधिकार संगठनों से अपेक्षाएं

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार संगठनों से भी यह अपेक्षा की जाती है कि पुलिस पर सीधे उंगली उठाने की बजाय पूरी जांच-पड़ताल करके ही अपने स्वर उठाए। इनकी एक छोटी-सी गलती पुलिस के उनके भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगा सकती है। पुलिस भी सामाजिक प्राणी है अतएव उनकी कार्यप्रणाली की जानकारी व उनकी प्रति सहयोग की भावना हर नागरिक व नागरिक संगठन में ही होनी चाहिए।

निष्कर्ष

मानव समाज में स्वतंत्र अस्तित्व व समुचित विकास के लिए मानवाधिकारों की सख्त आवश्यकता है और इन अधिकारों की अवहेलना के लिए पुलिस की भी उतनी ही जरूरत है। इस प्रकार मनुष्य जाति के लिए इन दोनों संगठनों का होना बेहद जरूरी है। कई बार देखा गया है कि मानवाधिकार संगठन भी पुलिस की ज्यादती की खबर उचित पटल पर नहीं रख पाते हैं।

मानवाधिकार आयोग की भी अपनी कुछ सीमाएं हैं जैसे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सेना द्वारा मानवाधिकार उल्लघंन की जांच की कोई शक्ति नहीं है। इनके अलावा साधारण मामलों में भी आयोग केवल संबंधित सरकार के पास शिकायत भेज सकता है, उसके पास सीधे कार्रवाई के कोई अधिकार नहीं है। आयोग को जेलों का दौरा करने से पूर्व भी राज्य सरकार से सहमति लेनी पड़ती है। ऊपरवर्णित विभिन्न प्रावधानों के चलते मानवाधिकारों की रक्षा करना मुश्किल भरा कार्य है।

मानवाधिकार आज केवल मानवतावादी अवधारणा तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त विधि व संपूर्ण मानव समुदाय के नागरिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकारों का संवैधानिक उपचार है।

पुलिस को यह समझना जरूरी है कि आज हम जिस खुले समाज में रह रहे हैं वहां मानवाधिकारों की अवहेलना नहीं हो, इसकी पुख्ता व्यवस्था होनी चाहिए। प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू के अनुसार पुलिस सही और गलत के चौराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी जिम्मेदारी सही की रक्षा व गलत को पकड़ना है। अपनी श्रेष्ठ भूमिका में वह अपने आप ही एक संरक्षक, एक मार्ग दर्शक, एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा व्यवस्था और प्राधिकार का प्रतीक है।

संदर्भ

1. जगजीतसिंह (2008) : मानवाधिकार वायदें और हकीकत, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
2. सदरलैंड एंड केसी (1968) : प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिमिनोलोजी

श्रीमती मंजू शर्मा (2008) : नारी शोषण और मानवाधिकार, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

दिलीप जाखड़ (2000) : मानवाधिकार क्लासिक कलेक्शन, जयपुर

डा. जी.पी. नेमा और के.के. शर्मा (2006) : मानवाधिकार सिद्धांत एवं व्यवहार कॉलेज बुक डिपो, जयपुर

कैलश नाथ गुप्त (2004) : मानवाधिकार और उनकी रक्षा, अविराम प्रकाशन, दिल्ली

जेम्स वेदकुमचेरी : ह्यूमन राईट एंड पुलिस इन इंडिया

आर. के नरसिम्हा : 1994 : ह्यूमन राईट एंड सोशल जस्टिस, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली

अर्जुन देव : 1996 : ह्यूमन राईट ए सोर्स बुक, एन.सी.ई.आर.टी.

❑

हरीत्मा से लालिमा तक : छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद की मीमांसा

राकेश कुमार सिंह,

द्वितीय कमान अधिकारी 81 बटालियन केरिपुबल
अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

नक्सलियों ने हिंसक आंदोलनों के द्वारा देश के कुछ भागों में असुरक्षा का वातावरण बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इन क्षेत्रों में सबसे ज्यादा प्रभावित राज्य झारखंड, उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ हैं। लेकिन इन सभी में छत्तीसगढ़ नक्सलियों की रणनीति का एक अहम हिस्सा है। इस राज्य के दक्षिणी भाग के बस्तर संभाग में नक्सलियों द्वारा अनेक हिंसात्मक कार्रवाईयों को अंजाम देकर सुरक्षा बलों को काफी नुकसान पहुंचाया है। नक्सलियों के सैन्यीकरण एवं युद्ध रणनीति ने सुरक्षा बलों के पराक्रम को चुनौती दी है जिसे एक समेकित योजनाबद्ध तरीके से नाकामयाब करने की जरूरत है। नक्सलियों द्वारा की गईं वारदातों की संख्या में वर्ष-2008 में 2007 की तुलना में कमी हुई है लेकिन इन वारदातों में गुणात्मक वृद्धि हुई जिसके कारण सुरक्षा बलों एवं नागरिकों के हताहतों की संख्या बढ़ी है। अगर राष्ट्रीय स्तर पर नक्सली समस्या की विवेचना करें तो 2008 में एक सितम्बर तक 993 वारदातें हुई, जिसमें 175 सुरक्षाकर्मी शहीद हुए एवं 310 अन्य नागरिकों की हत्या कर दी गई। कुल नक्सली वारदातों का लगभग 68% सिर्फ छत्तीसगढ़ एवं झारखंड में होता है तथा इनमें कुल का लगभग 59% मृत्यु इन घटनाओं में होती है। इनमें छत्तीसगढ़ में 363 वारदातें हुईं जिसमें 49 सुरक्षाकर्मी शहीद हुए एवं 95 अन्य नागरिकों की हत्या हुई। अतएव यह आवश्यक है इन प्रभावित राज्यों में नक्सलियों द्वारा अपनाई जा रही रणनीति की गहन समीक्षा की जाए तथा उपयुक्त प्रतिकारक रणनीति हेतु सुरक्षा बलों के कार्मिकों को संवेदनशील बनाया जाए।

राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में नक्सलवाद का लगातार बिस्तार हो रहा है। अपुष्ट अनुमानों के अनुसार इनकी पहुंच एवं प्रभाव अब देश के 22 राज्यों के 220 जिलों में हो गया है। हालाकिं इनमें से सिर्फ 62 जिलों को ही बुरी तरह प्रभावित माना गया है। लेकिन मध्य 1980 में सिर्फ सात राज्यों के 31 जिलों में प्रभाव एवं 2003 में नौ राज्यों के 55 जिलों में प्रभाव के बाद 2008 में 220 जिलों में प्रभाव नक्सलियों के सफल रणनीति का द्योतक है। इस पृष्ठभूमि में नक्सली ग्रामीण एवं आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों के बाद 2004 से अपने आंदोलन को शहरों के पास पहुंचाना चाहते हैं। नक्सलियों की विस्तार योजना की समीक्षा करना इसलिए भी आवश्यक है कि ये अपने विस्तार एवं प्रभाव के लिए उपयुक्त राजनैतिक माहौल बनाते हैं। लोगों की समस्याओं से जुड़ने की कोशिश करते हैं तथा उसके लिए आंदोलन करते हैं। तदुपरांत योग्य कर्मी को सक्रिय संगठनात्मक कार्य में लगाते हैं एवं योजनाबद्ध तरीके से आगे बढ़ते हुए हिंसात्मक मंसूबों को अंजाम देते हैं जिससे एक भय एवं दहशत का वातावरण पैदा होता है और अनेकानेक लोगों को जबरन नक्सलियों द्वारा अपने आंदोलन में शामिल कर लिया जाता है। राजनैतिक एवं संगठनात्मक पहलुओं को मजबूत कर क्रमशः सुरक्षा बलों के विरुद्ध छापामार युद्ध शुरू करते हैं।

नक्सली अपने राजनीतिक लक्ष्यों हेतु लोकयुद्ध एवं सशस्त्र संघर्ष की नीति अपना रहे हैं इसमें लोगों का समर्थन नहीं रहने पर भी उन्हें हिंसक गतिविधियों में सहयोग देने के लिए बाध्य किया जाता हैं। छापामार युद्ध की रणनीति में लोगों को समर्थन या जबरन समर्थन हासिल करने के अलावा अनेक भौगोलिक, सामाजिक परिस्थितियों के अलावा स्थानीय राजनीतिक एवं terrain

की भी अहम भूमिका होती है। बस्तर क्षेत्र में नक्सलियों ने इस परिस्थितियों का अपने तथाकथित क्रांतिकारी संघर्ष के लिए गुणात्मक उपयोग किया है। नक्सलियों के Compact Red Zone (रेड कॉरिडोर) में छत्तीसगढ़ की खासकर अबुजमाड क्षेत्र का सामरिक महत्व है। अतः इस क्षेत्र में सुरक्षा बलों के साथ होने वाली किसी भी मुठभेड़ में बल की हानि नक्सलियों के इरादों को मजबूत करेगी। अतएव छत्तीसगढ़ में सुरक्षा बलों द्वारा चलाए जा रहे परिचालनों में गुणात्मक बदलाव की आवश्यकता है जो नक्सलवादियों को शारीरिक रूप से खत्म करे तथा सामरिक तौर पर उनके सैन्य शक्ति का विनाश करे। साथ ही साथ विकास के कार्यों में समन्वय स्थापित कर क्षेत्र के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए सकारात्मक भूमिका निभाए। चूंकि सुरक्षा बलों के रूप में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल की सबसे ज्यादा पदस्थापना है एवं नक्सली विरोधी अभियानों की नेतृत्व एवं कार्यनीतियों की महती जिम्मेवारी भी बल की है अतः बल को अपने व्यावसायिक दक्षता को निखारने का सुंदर अवसर हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य में अब तक नक्सलियों द्वारा किए गए घटनाओं का वर्षवार ब्यौरा निम्न है :—

वर्ष	2004	2005	2006	2007	2008 31.08.08 तक
घटनाओं की संख्या	352	385	715	582	363
सुरक्षाकर्मियों की हत्या	08	47	84	198	49
अन्य नागरिकों की हत्या	75	121	304	171	95
नक्सली मारे गए	15	32	74	66	45

राज्य में हो रही घटनाओं की विवेचना करने से नक्सलियों के रणनीतियों का स्पष्ट पता चलता है। ये लोग शासन के हरेक पहलुओं जिनसे इनके कार्यक्षेत्र में प्रभाव पड़ता है, का अध्ययन करते हैं एवं उसके अनुरूप ही स्थानीय लोगों को भड़काते हैं। ये सुरक्षा बलों के टैक्टक्स एवं कार्यनीति की समग्रता से विवेचना कर अपनी युद्ध नीति को कार्यान्वित करते हैं। फलतः जब I.E.D. से होते हुए नुकसानों को देखकर सुरक्षा बलों ने जंगल एवं पहाड़ियों में पैदल चलना शुरू किया तो पुनः नक्सलियों ने घात लगाकर स्वचालित हथियारों के इस्तेमाल से नुकसान पहुंचाने की रणनीति बनाई। I.E.D. के प्रभावी इस्तेमाल द्वारा नक्सलियों ने पिछले कुछ महीनों से सुरक्षा बलों के परिचालन को धीमा कर दिया है क्योंकि कहीं भी मूवमेंट करने के लिए गाड़ियों का इस्तेमाल न के बराबर किया जाता है। इसके लिए बल के पास पर्याप्त संख्या में एंटी लैंड माइन गाड़ियों की जरूरत पड़ेगी। इन क्षेत्रों में विस्फोटकों की बहुतायात ने यह भी आवश्यक कर दिया है कि बल के कार्मिक I.E.D. के खतरों का सामना करने के लिए पूर्ण रूप से प्रशिक्षित रहें।

वर्ष 2008 में सुरक्षा बलों की हानियां :

सुरक्षा बल	शहीद	घायल	हथियार लूटे गए
के. रि. पु. बल (CRPF)	38	47	21
राज्य पुलिस (State Police)	04	09	04
के. औ. पु. बल (CISE)	03	02	04
छत्तीसगढ़ सशस्त्र बल (CAF)	02	—	02
जिला बल (DF)	03	01	01
मिजो पुलिस (Mizo Police)	—	02	02
एम. पी. ओ. (SPO)	04	08	09
एम. टी. एफ. (STF)	05	—	—

क्रांतिकारी युद्धनीति के अपने सिद्धांतों के तहत नक्सली छापामार युद्ध (Gureilla warfare) को चलायमान युद्ध (Mobile warfare) एवं उसके बाद पोजीशनल युद्धनीति (Positional Warfare) में क्रमिक विकास करना चाहते हैं। चलायमान युद्ध आजकल चर्चा का विषय है क्योंकि नक्सली नेतृत्व यह मानने लगा है। कि उनके छापामार युद्ध को चलायमान युद्ध में बदलने का समय आ गया हैं। चलायमान युद्ध का उनका मूल मंत्र है 'लड़ो जब तुम जीत सकते हो, और दूर निकल जाओ जब तुम नहीं जीत सकते। चलायमान युद्ध में किसी खास स्थान पर कब्जा बनाए रखने के बदले प्रतिद्वंद्वी के सेना को तबाह करने एवं आक्रमण करते रहने पर ज्यादा जोर दिया गया है। चलायमान युद्ध में क्रांतिकारी सेना के बयान के लिए त्वरित परिचालन एवं आक्रमण के साथ तुरंत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाने (Move) की क्षमता पर बल दिया गया है। यह युद्धनीति बड़े क्षेत्रों में दुश्मन के रणनीति एवं क्षमता के अनुरूप एक जगह से दूसरे जगह बदलने एवं फुर्ती से पुनः एकत्रित हो आक्रमण करके दुश्मनों का ज्यादा नुकसान पहुंचाने की नीति है। इसमें युद्ध नीति में स्थितियों के अनुसार हमेशा आवश्यक रणनीतियों में बदलाव एवं युद्ध की स्थिति अपनी सामर्थ्य के अनुसार ढालने की भी प्रक्रिया है। इसके लिए ज्यादा संख्या में योद्धा एवं नियमित तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित सैनिक आधुनिक हथियारों से लैस होकर समन्यवित युद्ध करते हैं। यह छापमार युद्ध से ज्यादा कठिन एवं जटिल हैं तथा इसके लिए बड़े उच्चे दर्जे का अनुशासन एवं उच्च कोटी की नेतृत्व क्षमता की आवश्यकता होती है तथा नेतृत्वकर्ता का युद्धकौशल में निपुण होना भी आवश्यक है। इसमें पहल एवं सरपाईज हमेशा उनके पास होता है जिससे विराधी सेना रणनीतियों को हमेशा बदलते रहने को विवश रहती है तथा ज्यादातर समय नक्सलियों के सैन्य दस्तों की खोज में ही लगे रहना पड़ता है।

हाल ही में छत्तीसगढ़ में नक्सलियों से जब्त साहित्यों के विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे लोग सुरक्षा बलों द्वारा समन्यवित संयुक्त परिचालनों एवं संगठित सूचनातंत्र द्वारा सूचनाओं के आदान-प्रदान से खासे चिंतित हैं एवं अपने कैडर को सावधानियां बरतने को कह रहे हैं। सुरक्षा बलों द्वारा विशेष प्रशिक्षित दस्ते द्वारा अभियान, टैक्टीकल संचालन एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में समन्वय से नक्सलियों की युद्ध नीति प्रभावित हो रही है। और वे इसका समाधान ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। हालांकि उर्पयुक्त वर्णित कदमों से सुरक्षा बलों को काफी फायदा होता है लेकिन सीमावर्ती क्षेत्रों में समन्वय एवं विशेष प्रशिक्षण की कमी ही नक्सलियों के विरुद्ध अभियान की सबसे बड़ी चुनौती है।

नक्सलियों से चुनौतियों का मुकाबला करने में आसूचना का आभाव ही सबसे बड़ी बाधा है। नक्सलियों ने छापामार युद्ध पद्धति अपनायी है तथा ऐसे क्षेत्र को चुना जहां पर बिना एक्सपोज हुए आसूचना एकत्र करना बहुत ही कठिन है। जंगलों के बीच गांव के पास घात लगाना एवं पहाड़ों पर पनाह लेने के कारण सुरक्षा बलों को लगातार छापा मारते रहने पर भी प्रर्याप्त सफलता नहीं मिलती। फिर नक्सलियों द्वारा ग्रामीणों को डरा-धमका कर बड़े क्षेत्रों में अपना प्रभाव बढ़ाने के कारण सुरक्षा बलों के जिम्मेवारी का ईलाका भी बहुत बढ़ जाता है। जिससे परिचालनिक प्रभाव में कमी होती है। नक्सली इसी का फायदा उठाते हैं। ऐसे परिस्थितियों में सटीक सूचनाओं के आधार पर नक्सलियों की स्थिति एवं छापामारी के बारे में जानकारी इकट्ठा करना नितांत आवश्यक है। इसके लिए उपयुक्त रणनीति सिर्फ अपने ही सूचनातंत्र को मजबूत करने से नहीं होगी बल्कि नक्सलियों के सूचनातंत्र को तोड़ने की भी आवश्यकता है। नक्सली संघम सदस्यों, ग्रामीणों एवं अपने दस्तों के सदस्यों द्वारा सुरक्षा बलों के बारे में जानकारी इकठ्ठा कर लेते हैं। हालांकि यह तंत्र असंगठित है लेकिन उनके अनुसार

स्वतः स्फूर्तता से भरे पड़े हैं। परंतु जन अदालतों द्वारा जिस प्रकार का भय का माहौल बनाया गया है इसके कारण यह सूचनातंत्र असंगठित होने के बावजूद कमजोर नहीं हैं। नक्सलियों द्वारा बल के विरुद्ध अभियान करने से पहले जगह का रैकी किया जाता है एवं नक्शा एवं रिपोर्ट तैयार करता है। इसके उपरांत बल की गतिविधि, संख्या, हथियार इत्यादि के बारे में अपने सक्रिय कैडरों द्वारा पता लगाते हैं। सुरक्षा बल को आतिकारक प्रणाली आसूचना ग्रामीणों एवं अपने गुप्तचरों के जाल से इस तरह की सूचनाओं को दुश्मनों के पास पहुंचने से रोकने के लिए विकसित करना होगा। आसूचना तंत्र को विकसित एवं मजबूत करना नक्सलियों के विरुद्ध अभियानों की सबसे प्राथमिक आवश्यकता है। इसके लिए स्थानीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां तथा राज्य पुलिस के आसूचना तंत्र को फौरी तौर पर संगठित कर इसको प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

आसूचना सटीक परिचालनिक रणनीति के कार्यान्वयन में मदद पहुंचाती है। इसके बाद आवश्यकता होती है प्रशिक्षित रणबांकुरों की जो नक्सलियों के सैन्य योजनाओं को विफल कर दे। नक्सलियों द्वारा जंगल में छापामार युद्ध से लड़ने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो सामान्य तौर पर राज्य पुलिस के कर्मियों को नहीं दी जाती है तथा प्रशिक्षित अर्धसैनिक बलों के लिए भी नक्सली से युद्ध की क्षमता नाकाफी सिद्ध हो रही है। अतः पुलिस एवं अर्धसैनिक कर्मियों को प्रशिक्षित करने की विशेष आवश्यकता है। नक्सलियों द्वारा चलयमान युद्ध कौशल में अपने को परिवर्तित करने का निश्चय उनके बढ़ते हौंसले एवं विश्वास को दर्शाता है। चलयमान या छापामारी युद्ध को विफल करने के संगठित एवं प्रशिक्षित पुलिस कर्मियों द्वारा ही किया जा सकता है। हाल के दिनों में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के "कोबरा बटालियन" के विशेष प्रशिक्षत दस्तों द्वारा की गई कार्रवाईयों में सफलता इस बात का परिचायक है। नक्सल विरोधी अभियान हेतु कार्मिकों में प्रशिक्षण हेतु केन्द्र सरकार द्वारा केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के कमांड में नए प्रशिक्षण स्कूल खोलना भी इसी दिशा में एक सराहनीय प्रयास है।

जनता एवं जनमिलिशिया की सक्रिय भागीदारी के बगैर नक्सलियों द्वारा अपना आंदोलन नहीं चलाया जा सकता है। इसके लिए वे सरकार के खिलाफ जनता में दुष्प्रचार कर आक्रोश पैदा करते हैं। वे जनता के पिछले वर्ग के लोगों को पूरा महत्व दे कर उनके सशक्तिकरण की बात करते हैं। जनमिलिशिया को संगठित करते हैं और प्रशिक्षण कैम्प चलाते हैं। तथाकथित तौर पर वे इन मासूम जनता को सरकारी दमनकारी नीतियों से बचाने की बात करते हैं। नक्सली जनमिलिशिया द्वारा सुरक्षा बलों के विरुद्ध अभियानों में आसूचना एकत्रित करवाने, अभियान में शामिल होने के अलावा बल को हैरान-परेशान करने वाली अनेक गतिविधियों को अंजाम दिलवाते हैं। गौरतलब यह है कि इन दुष्प्रचारों से ये लोगों को फुसला लेने में सफल होते हैं या जन अदालतों द्वारा लोगों को प्रताड़ित कर भयभीत करते हैं तथा उन्हें अपने अभियान में शामिल होने के लिए विवश करते हैं। इन दुष्प्रचारों के विरुद्ध सरकारी तंत्र एवं प्रचार तंत्र को सक्रिय होने की आवश्यकता है। नक्सलियों के असली चेहरों को बेनकाब करना होगा तथा लोगों के बीच यह जागरूकता पैदा करनी होगी कि इन लोगों का मकसद अपनी राजनीतिक आकांक्षाएं पूरी करनी है न कि किसी के राजनीतिक और सामाजिक उत्थान के लिए कोई काम करना। लोगों को बताना होगा कि इनके प्रभाव वाले इलाके में विकास का काम इन्होंने रोक रखा है। क्योंकि ये काम करने वालों से चंदा वसूलते हैं और नाहक ही परेशान करते हैं तथा इन क्षेत्रों में सरकारी कर्मचारी, पुलिसकर्मियों इत्यादि को जनता के लिए किए गए कार्यों में बाधा पहुंचाने के उद्देश्य से हत्या कर देते हैं। नक्सलियों द्वारा बार-बार बिजली व्यवस्था को बाधित

करना, बंद का आह्वान करना, रेल को रोकना एवं मोबाइल टावर को उड़ाना इत्यादि किस प्रकार वहां की जनता को लाभ पहुंचाएगे। नक्सली इस तरह के जन विरोधी कार्य अपने स्वार्थ के लिए करते हैं तथा दोष सरकार के ऊपर मढ़ देते हैं। सरकार एवं सुरक्षा बलों की जनता को जागरूक बनाकर नक्सल विरोधी अभियान में शामिल करना एक चुनौती पूर्ण कार्य तो है लेकिन सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए भू-सुधार नीति को अपनाते हुए इन क्षेत्रों में हर कीमत पर आधारभूत संरचनाएं बनानी होगी। विकास कार्यों को देख कर ही जनता का विश्वास सरकारी तंत्रों में होगा और उनकी नक्सलियों के प्रति विद्रोह करने का साहस होगा।

नक्सलियों की युद्ध नीति में विस्फोटकों का खुद इस्तेमाल होता है। विस्फोटकों की सही सुरक्षा एवं इसे गलत हाथों में जाने से रोकने हेतु प्रभावी कदम उठाना अतिआवश्यक हैं। छत्तीसगढ़ में नक्सलियों ने माइन प्रूफ गाड़ियों को भी विस्फोटकों से उड़ाकर सुरक्षाबल को नुकसान पहुंचाया है। उनसे जब्त साहित्यों से यह पता चलता है कि सही तकनीक अपनाते हुए माइन प्रूफ गाड़ियों को उड़ाकर वे सुरक्षा बलों द्वारा उनके क्षेत्र में निडर होकर प्रवेश करते जवानों को रोकना चाहते हैं। उनका विचार है कि ऐसी गाड़ी में अक्सर ऑफिसर चलते हैं। अतः ऐसे काफिला पर हमला करने से अगर अधिकारी सुरक्षित रहते एवं जवान उनके निशाने बने तो जवानों और अधिकारियों के बीच एक अंतर विरोध पैदा होगा। हालांकि उनके ऐसे किसी भी सोच का बल के जवानों एवं अधिकारियों के बीच के संबंधों पर प्रभाव नहीं डाल सकता लेकिन माइन प्रूफ गाड़ियों को असुरक्षा के घेरे में ले लेने से बल की मारक क्षमता एवं संचलन में अवश्य कठिनाइयां होगी। अतः इसके मूल में बिस्फोटकों के गलत हाथों में जाने से रोकने का सफल प्रयास अति आवश्यक है।

नक्सलियों ने अपने युद्ध रणनीति को हमेशा इस तरह बनाए रखा है कि मीडिया में चर्चित रहें तथा सुरक्षा बलों के प्रति लोगों का विश्वास उठ जाए। इसके लिए वे निर्दोषों की निर्मम हत्या से भी परहेज नहीं करते। नक्सलियों ने लैंड प्रूफ गाड़ियों के अलावा 2008 के उत्तरार्थ मे ही के.रि.पु. बल की 41वीं वाहिनी एवं 43वीं वाहिनी के गाड़ी को बिस्फोट से उड़ाकर अपनी नृशंसता एवं हिंसक राणनीति को पुनः दोहराया है। गाड़ियों को विस्फोट करने के अलावा प्रेशर बम एवं अम्बुश लगाने में भी ये बिस्फोटकों का भरपूर इस्तेमाल कर रहे हैं। अतः बम निरोधक दस्ते का वाहिनी के साथ संवेदनशील इलाकों में परिचालन के लिए होना जरूरी है। बमों को पहचानने में Sniffer Dogs की तैनाती एक कारगर नीति साबित हो सकती है। नक्सलियों की रणनीति धोखे की है अतः परिचालन जहां तक संभव हो सभी सावधानियों के साथ किया जाए तथा गाड़ियों का प्रयोग नहीं किया जाए। मोटर साईकिल या साईकिल पर परिचालन ज्यादा सफल एवं सुरक्षित होगा।

नक्सलियों द्वारा अपने सैन्य सशक्तिकरण के लिए आधुनिक हथियारों को हासिल करने पर विशेष बल दिया जा रहा है। नक्सलियों द्वारा लगातार वारदात करने एवं सुरक्षा बलों के लोगों के हताहत होने के कारण छत्तीसगढ़ के डंडाकारण्य में नक्सली समझते हैं कि उनका एकक्षत्र प्रभाव/राज है। 29 अगस्त से 22 अक्टूबर तक सिर्फ केरिपुबल के खिलाफ की चार बड़ी घटनाओं को अंजाम दिया जिसमें लगभग 25 कार्मिक शहीद हो गए। इन घटनाओं से निःसंदेह नक्सलियों की एक 'अपराजेय' की छवि बनती है। लेकिन अगर समुचित बलों की उपस्थिति रहे एवं प्रभावी परिचालनों का संचालन किया जाए तो स्थिति कुछ अलग ही रहती है। वर्ष 2008 नवम्बर में तमाम आशंकाओं बावजूद राज्य विधानसभा के चुनाव में किसी प्रकार की कोई बड़ी घटना नहीं हुई। बाद में प्राप्त आसूचनाओं से भी स्पष्ट होता है कि

नक्सलियों द्वारा हर जगह तमाम तैयारियों एवं कोशिशों के बावजूद सुरक्षा बलों की तैनाती ने कुछ नहीं होने दिया।

नक्सलियों समस्या को राष्ट्रीय परिदृश्य में देखना होगा। सीमावर्ती क्षेत्रों में राज्यों के अपने-अपने क्षेत्रों में ही जिम्मेवारी की प्रथामिकता के कारण नक्सली अपनी गतिविधियों को एक राज्य में योजना बनाकर दूसरे राज्य में वारदात करते हैं तथा कहीं अन्य जगह पनाह ले लेते हैं। खासकर झारखंड से सटे छत्तीसगढ़ के सरगुजा क्षेत्र में नक्सली समस्या का मूल कारण इसका सीमावर्ती क्षेत्र होना है अन्यथा सुरक्षाबलों के प्रभावी कार्रवाई से उनका उन्मूलन संभव है। इस क्षेत्र के स्थानीय लोगो का नक्सली को समर्थन प्राप्त नहीं है। अतः केंद्रीयकृत संयुक्त टास्क फोर्स या नियमित परिचालनिक समन्वय की नीति नक्सली विरोधी अभियानों के लिए सफल साबित होगी। हाल के दिनों में चार सितम्बर 2008 को चुनचुना-पुंदाग में सरगुजा क्षेत्र में पहली बड़ी घटना को अंजाम देते हुए नक्सलियों ने केरिपुबल की टुकड़ी पर हमला किया जिसमें तीन कार्मिक शहीद हो गए एवं पांच घायल हुए। कुछ दिनों बाद ही पुनः राज्य पुलिस के महानिरीक्षक पर घात लगाकर हमला किया गया तथा उन्हें घायल कर दिया। अतः नक्सली छोटी-मोटी वारदातें कर सुरक्षा बलों एवं अधिकारियों को Trap करने की अपने पुरानी रणनीति में अभी भी सफल हो रहे हैं। आवश्यकता हैं कि जब तक नक्सली शस्त्र नहीं छोड़ते तब तक उनके खिलाफ हर परिचालन को बड़ी बारिकियों से अंजाम देने की आवश्यकता हैं। जैसे एक फरवरी 2009 को शांति वार्ता की पेश कश कर 2 फरवरी 2009 को गठ चिरौली (महाराष्ट्र) में एक पुलिस वाहन को उड़ा कर 15 जवानों की हत्या कर दी। इन वारदातों से बचाव युद्धनीति के प्रतिकारक रणनीतियों को अपना कर ही संभव हैं।

प्रभावी परिचालन एवं तैनाती से सुरक्षाबल बहुत हद तक नक्सली हिंसा पर काबू पा सकते हैं। हालांकि नक्सलवाद के खात्में के लिए क्षेत्र का समग्र विकास, भू-सुधार नीति एवं राजनीतिक निर्णयों की आवश्यकता है। लेकिन अगर हम सुरक्षाबलों की भूमिका की बात करें तो उनके लिए एक प्रभावी तथा प्रेरणादायक नेतृत्व एवं नीति की आवश्यकता है। प्रायः नेतृत्व आक्रमक परिचालनों से बचना चाहता है एवं नई परिचालनिक पहल की भी कमी है। कर्मियों द्वारा लगातार एक परिचालनिक क्षेत्र से दूसरे परिचालनिक क्षेत्रों में पदस्थापना होते रहने से जोश की कमी है। इस क्षेत्र में तैनाती पर कोई विशेष प्रोत्साहन भी नहीं दिया जा रहा है न ही कार्मिकों को छत्तीसगढ़ पदस्थापना के बाद किसी प्रकार का लाभ उत्तरोत्तर पदस्थापना इत्यादि में दिया जा रहा है। जवानों एवं अधिकारियों के मनोबल को ऊंचा रखने के लिए सुरक्षाबलों के कार्मिक प्रबंधकों की भी महती भूमिका है जिसे संगठन को जल्द ही आत्मसात करने की जरूरत है। नक्सल विरोधी अभियान के लिए यह प्रेरणादायक सिद्ध होगी और यह प्रेरणा नई साहस का संचार करेगी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नक्सलियों द्वारा घृणित हिंसा के तांडव के कारण छत्तीसगढ़ राज्य आज खनिज-संप्रदा के बहुतायात के लिए नहीं बल्कि खून-खराबे के लिए चर्चित रहता है। कभी "धान का कटोरा" कहा जाने वाला छत्तीसगढ़ आज "बारूद का कटोरा" कहा जाने लगा है। बस्तर "दशहरा" के उत्सव को मनाने के लिए प्रसिद्ध था आज दहशत में है। बस्तर कला, जंगल एवं आदिवासियों की संस्कृति के सौंदर्य से ज्यादा "लाल सलाम" के राजनैतिक दुष्प्रचार एवं जनविरोधी कार्यों के लिए चर्चा में है। लेकिन यहां के स्थानीय लोगों में नैतिक साहस एवं संकल्प है कि वे नक्सलियों का उन्मूलन कर सकते हैं। सलवा जुडूम आंदोलन उनका ऐसा ही एक प्रयास था। इस समय सुरक्षा बलों द्वारा प्रभावी परिचालन काफी कारगर सिद्ध हो सकता है। केरिपुबल की पदस्थापना के बाद काफी मार्गों को खोला गया है तथा आर्थिक विकास की गतिविधियों के लिए

सुरक्षा प्रदान कर एक नए आयाम की तरफ इस क्षेत्र की दिशा को मोड़ दिया है। सुरक्षा हेतु भी समग्र नीतियों की आवश्यकता है। जैसे राज्य सरकार में आसूचना तंत्र का विकास एवं सुरक्षा बलों के साथ समन्वय, विस्फोटकों पर नियंत्रण, नक्सली दुष्प्रचार के खिलाफ जनता को जागरूक करना इत्यादि शामिल है। यह क्षेत्र अभी भी असीम संभावनाओं से भरा-पड़ा है एवं लोगों में सफलताओं को छूने की इच्छा है। सुरक्षा बल भी इस क्षेत्र की कानून व्यवस्था को चुनौती मान नक्सलियों की हिंसा पट काबू पाने को तैयार है। समग्र विकास, समग्र सुरक्षा एवं जागरूक जनता छत्तीसगढ़ को पुनः खोई हुई शांति, संपूर्ण सौंदर्य एवं संपन्नता के साथ लौटा सकती है।

❑

प्रभावकारी पुलिस नेतृत्व के मौलिक गुणों का सिंहावलोकन

उमेश कुमार सिंह,

(से.नि., पुलिस महानिरीक्षक, बिहार।)

पुलिस अन्य सरकारी संस्थाओं से बिल्कुल भिन्न एवं विशिष्ट प्रकार की सरकारी संस्थान है। प्रत्येक सरकार के लिए यह आवश्यक है और राज्यों में विधि का शासन स्थापित रखने एवं लोक व्यवस्था कायम रखने में इसकी अहम भूमिका है। देश की आंतरिक सुरक्षा की जिम्मेवारी पुलिस के जिम्मे ही रहती है। किंतु यह खेदजनक है कि कई कारणों से पुलिस की छवि अधिकांश राज्यों में आए दिन विवादित होती दिखाई देने लगी है और पुलिस को मौखिक एवं शारीरिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। उन्हें निरंतर गलत समझा जाता है तथा अखबारों और मीडिया द्वारा उन्हें इस प्रकार दिखाया जाता है, जिससे अधिकांश पुलिस एक विवादित कर्तव्यहीन लोगों का समूह जैसा दिखाई देने लगता है। कभी पर्याप्त कार्रवाई नहीं करने पर, कभी अपेक्षा से अधिक कार्रवाई करने पर कभी सख्ती नहीं बरतने पर, तो कभी अधिक सख्ती और बराबर होने का आरोप लगाया जाता है। इस प्रकार के लगातार हो रहे प्रहार से पुलिस काफी आहत होती दिखती है तथा ऐसा दृष्टिकोण पुलिस को समाज से काफी अलग-थलग करता जा रहा है। यह बात सही है कि पुलिस बल में कुछ एक बुनियादी कमी है, किंतु यह भी उतना ही सही है कि पुलिस बल में ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार हों और उनमें सत्यनिष्ठा से कार्य करने की भरपूर क्षमता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यंत आवश्यक है कि पुलिस के शीर्ष नेतृत्व को काफी सर्तकता से अपने पूरे बल के सदस्यों का विश्वास हासिल करते हुए नेतृत्व देने की अनिवार्यता है और उन्हें बराबर ही निःसंकोच भाव से आत्मपरीक्षण एवं चिंतन करने की सतत् आवश्यकता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में हमारे देश में प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सुचारू रूप से संचालन हेतु पुलिस प्रशासन का सुदृढ़ीकरण तथा उसकी गुणवत्ता एवं प्रभावोत्पादकता में वृद्धि आवश्यक है। इस संबंध में पुलिस की कार्य क्षमता को प्रभावित करने में कई ऐसे मौलिक कारक तत्व हैं, जो पुलिस के विभिन्न नेतृत्वों के अंतर्गत सुयोग्यता से कार्य संपादन करते रहने में उन्हें शक्ति प्रदान कर सकते हैं। पुलिस में अच्छे नेतृत्व के लिए इन मौलिक तत्वों के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है। इनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं :—

1. पुलिस मनोबल एवं अनुशासन

उच्च कोटि का मनोबल एवं अनुशासन का पुलिस के लिए वही महत्व है, जो शरीर के लिए आत्मा का। उच्च मनोबल के साथ अनुशासित जवानों को ही चारित्रिक सद्गुणता नसीब हो पाता है। सत्य उसकी आत्मा, धीरज और संयम उसकी भुजाएं और निर्भयता तथा सहनशीलता उसके पैर हैं। ये दोनों गुण जवानों के अन्तःकरण की निरंतर आवाज है, उनके संगठन की अनन्त शक्ति है, मार्ग-दर्शन की रोशनी तथा कर्तव्यारूढ़ हो पूरी निष्ठा और लग्नशीलता के साथ कार्य सम्पादन करते रहने की बुनियाद की ओर प्रेरणा का स्रोत है। ये उनका वह अनमोल रत्न है, जिसे पाकर उन्हें कुछ पाना नहीं रह जाता और खोकर कुछ खोना बाकी नहीं रहता। मनोबल और अनुशासन पुलिस समुदाय का अनमोल आभूषण है। यह वह आभूषण है, जिसकी चमक-दमक दिनोदिन बढ़ती और निखरती ही जाती है, जिसका प्रकाश समय के साथ तीव्र होता चला जाता है और जिसकी लौ संघर्षों के बीच पनपती और प्रखर होते रहती है। पुलिस बल के लिए इनकी मर्यादा और आवश्यकता वही है, जो सधवा

स्त्री के लिए सुहाग की। सुहाग के बिना धन-दौलत से परिपूर्ण स्त्री जिस प्रकार जलहीन सरोवर एवं फलहीन वृक्ष के सदृश्य है, उसी प्रकार मनोबल और अनुशासन के बगैर पुलिस भी विधवा की मांग के समतुल्य है। वह निर्धन, दुर्बल एवं अनियंत्रित और नेतृत्वहीन भीड़ के समान है।

मनोबल और अनुशासन को शब्दों अथवा वाक्यों की अभिव्यक्ति में परिभाषित करना बड़ा ही कठिन कार्य है। साधारण तौर पर हम मनोबल को अपने काम के प्रति मानव के दृष्टिकोण और धारणा के रूप में लेते हैं तथा यह मनुष्य के मानसिक स्थिति को चित्रित करता है। एक विद्वान ने इसे **"अनुशासन, निष्ठा, गौरव एवं लक्ष्य की स्थिरता और संघर्ष के उद्देश्य में विश्वास की स्थिति का ही दूसरा नाम कहा है।"** निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि मनोबल एक मानसिक स्थिति है। यह वह अदृश्य शक्ति है, जो मानव समूह को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अपना सर्वस्व दाव पर लगाने के लिए उत्प्रेरित करती है। यह वह मानसिक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह समझता है कि उनका अस्तित्व केवल अपने तक ही सीमित नहीं है, वरन वे अपने से अधिक महान शक्ति या सत्ता से जुड़े हैं।

मनोबल की तरह ही अनुशासन को परिभाषा की परिधि में बांधना भी कठिन है। यह भी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह की एक मानसिक स्थिति ही है। व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का आज्ञा पालन या आज्ञा के अभाव में उचित कार्रवाई करने की दिशा में मानसिक झुकाव का नाम ही अनुशासन है। अनुशासन सभ्यता और संस्कृति की पहली सीढ़ी है। स्वभाव से मनुष्य निर्बंध रहना चाहता है। छोटा-से-छोटा बंधन भी उसे खटकता है। पर सामाजिक जीवन की सुचारूता बनाए रखने के लिए बंधन तथा एक नियम अत्यावश्यक सा हो जाता है। अनियमित जीवन से अराजकता फैलने का भय रहता है। यह नियमबद्धता ही अनुशासन है। नियमित जीवन तथा नियमित कर्तव्य ही अनुशासन के मौलिक तत्व है। इसके अभाव में संगठनात्मक शृंखलाएं टूट जाती हैं। पुलिस अथवा सैन्य जीवन अथवा संगठनों का अनुशासन प्राण है। यही कारण है कि नेतृत्व करने वाले एक पदाधिकारी के इशारे पर हजारों सैनिक अथवा सिपाही जान की बाजी लगाकर युद्ध अथवा संकटापन्न स्थिति का मुकाबला करते अपने प्राण को न्योछावर कर देते हैं। पुलिस अथवा सैन्य संगठनों में यह अतिआवश्यक है कि व्यक्तियों को एक सुसंगठित समूह में परिवर्तित कर दिया जाए, जिससे वे एक दल के रूप में एक उद्देश्य और एक ही इच्छाशक्ति के साथ कार्य कर सकें। यह कार्य अनुशासन के माध्यम से ही किया जा सकता है।

मनोबल एवं अनुशासन किस स्तर एवं कोटि का जिस संगठन का है, वह बहुत सारी बातों से प्रभावित होता है तथा अनेक बुनियादी प्रेरणादायक बातें हैं, जो जवानों के अनुशासन एवं उनके मनोबल को प्रभावित करता है। मनोबल वह गुण है, जो शारीरिक थकान और भय पर विजय प्राप्त करता है। थकान और भय उद्देश्य प्राप्ति में संलग्न मनुष्य के दो भयावह शत्रु हैं। उच्च कोटि का मनोबल ही व्यक्ति को संकटपूर्ण रास्ते पर अग्रसारित होने का साहस भरता रहता है। इसीलिए कहा गया है कि भयभीत, मनोबल विहिन एवं त्रस्त सेना या पुलिस अनियंत्रित एवं नेतृत्वहीन भीड़ के सदृश्य हो जाता है। मनोबल एवं अनुशासन ही साहस का प्रदर्शन एवं संकटापन्न स्थिति में कठिनाईयों का सामना कर आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करता है। लक्ष्य की प्राप्ति तक सर्वस्व न्योछावर कर प्रयत्नशील रहने का पाठ भी उच्च कोटि का मनोबल एवं अनुशासन ही जवानों को पढ़ाता है, जिससे कि वे अपने कर्तव्य के मार्ग पर दृढ़ प्रतिज्ञ और आरूढ़ रह सकें।

उच्च कोटि का मनोबल एवं अनुशासन की प्राप्ति किसी भी संगठन को एक दिन में नहीं हो सकती है। अच्छे मनोबल एवं अनुशासन पुलिस अथवा सेना के नेतृत्व

करने वाले पदाधिकारी के व्यक्तिगत गुणों पर अधिक निर्भर करता है। जवानों का यह विश्वास होना अतिआवश्यक है कि उनके नेतृत्व करने वाले ईमानदार, कर्तव्यपरायण, न्यायवादी, निष्पक्ष और कठोर परिश्रमी एवं अध्ययनवसायी है। उनका चरित्र अनुकरणीय होना चाहिए तथा जवानों के सर्वतोमुखी विकास एवं अपनापन की भावना उत्पन्न करने में उन्हें सक्षम होना चाहिए। जवानों को यह भरोसा होना चाहिए कि उनके साथ उनके नेता यानी कमांडर भी लक्ष्य प्राप्ति में प्राण की बाजी लगाने में उनसे भी एक कदम आगे हैं। साथ ही जवानों के नेतृत्वकर्ता को दूरदर्शी भी होना चाहिए। जिसमें किसी भी परिस्थिति में विजय श्री उन्हें हाथ लगे, क्योंकि लगातार विजय यानी सफलता मिलने से जहां जवानों का मनोबल काफी बढ़ता है, वहीं पराजय या हार होने से उनका मनोबल काफी टूट भी जाता है और वे प्रभावहीन हो जाते हैं। कुशलता से प्रशासित एवं संचालित इकाई से ही उच्च कोटि के मनोबल की आशा की जा सकती है। कुशल प्रशासन का अर्थ होता है उचित आराम या अवकाश, कार्य की अनुरूप उचित वेतन और भत्ते, अच्छे कार्यों की बड़ाई एवं प्रशंसा और समुचित प्रचार, उपयुक्त छुटियां, मनोरंजन के साधनों की उपलब्धि, प्रोन्नति की आशा और परिवार की भलाई का पूर्ण विश्वास। असंतुष्ट जवान या पदाधिकारी अपना सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन कभी भी नहीं कर सकता है।

2. प्रशिक्षण

अच्छे किस्म के प्रशिक्षण की व्यवस्था पुलिस के मौलिक आवश्यक पहलू है। प्रशिक्षण विश्वास पैदा करता है तथा बल को अनुशासित बनाता है। बिना प्रशिक्षण के अनुशासन की कल्पना करना असंभव है। अच्छा प्रशिक्षण ही अनुशासित कर अब्वल कोटि के मनोबल को जवानों एवं पदाधिकारियों में प्रतिरोपित करता है। यह उसकी नींव की ईंट के समान होता है। प्रभावकारी प्रशिक्षण यह सुनिश्चित करता है कि जवान कठिनतम परिस्थिति में भी नहीं घबराएगें, बल्कि उसका मुकाबला अत्याधिक धैर्य, बुद्धिमानी एवं कार्य कौशल के साथ कुशलतापूर्वक करेंगे। प्रशिक्षण व्यक्ति को चट्टान के तरह दृढ़ बनाता है और उसमें विश्वास, मित्रता, अपनत्व एवं प्रखरता की भावना भरता है तथा उस इकाई में पर्व सा पवित्र कर्तव्य की भावना पैदा कर सामूहिक उत्तरादायित्व या प्रभावोत्पादक बोध करता है। कुछ अन्य मौलिक बातें भी है जो मनोबल और अनुशासन को प्रभावित करती हैं। उदाहरण स्वरूप यदि जवान अधिक पढ़े-लिखें हों तो नेतृत्व करने वाले पदाधिकारी को विशेष अभियान के मुख्य उद्देश्यों को बता देना भी जरूरी हो जाता है, जिसकी जानकारी के बिना उनका मनोबल गिरा रहेगा। अच्छे कार्यों के लिए जवानों को तत्क्षण ही पुरस्कृत करना चाहिए और उचित सम्मान देना चाहिए, जो दूसरे के लिए एक अनुकरण का विषय बन सकें। उच्चाधिकारी के आदेश पर कोई टिका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देना चाहिए और छोटी गलतियां को भी नहीं छोड़ना चाहिए, ताकि भविष्य में बड़ी गलती न हो सके।

परेड के साथ ही दैनिक जीवन में भी अनुशासन का प्रदर्शन करना चाहिए तथा दल की गरिमा एवं उसका कल्याण व्यक्ति विशेष के कल्याण से ज्यादा महत्वपूर्ण है, इसको सभी को समझना चाहिए और जवानों को हमेशा उद्देश्यपूर्ण कार्यों में व्यस्त रखना चाहिए, क्योंकि बेकार बैठा व्यक्ति अवश्य ही अनुशासनविहीन हो जाएगा तथा नीरसता भी मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। सैनिक नेता के अपने कार्यों और व्यवहार से बतलाना चाहिए कि अनुशासन कितना महत्वपूर्ण गुण है, क्योंकि उदाहरण, उपदेश से अच्छा होता है। जवानों को दण्ड एवं सुविधा देने का पक्षपातविहीन-तरीका सदा ही अपनाना चाहिए। ऐसा करने से ही कर्तव्य के प्रति समर्पण की भावना तथा उत्तरदायित्व का ज्ञान संभव हो सकेगा और उस विशेष इकाई के जवानों एवं पदाधिकारियों का मनोबल और

अनुशासन भी उच्च कोटि का रह जाएगा, जिसके अभाव में किसी भी देश अथवा समाज की पुलिस कभी भी सफल और प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सकेगी। उच्च कोटि का अनुशासन और उत्कृष्ट श्रेणी का मनोबल पुलिस के जवानों के लिए अत्यंत आवश्यक है, जिसके अभाव में वे कभी भी उत्कृष्ट परिणाम एवं सफलता हासिल नहीं कर सकेंगे। मनुष्य के जीवन में भी निरन्तर सफलता पाने के लिए अनुशासित रहकर अपने मनोबल को ऊंचा बनाए रखना आवश्यक है। सफलता की ये दोनों कुंजी हैं, जिनके बिना पुलिस बल का सही संचालन कर पाना असंभाव्य है। बुनियादी प्रशिक्षण के बाद वह व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए कि एक निश्चित अवधि के बाद भी आवधिक अल्पावधि प्रशिक्षण की व्यवस्था पूरे पुलिस बल एवं पदाधिकारियों के लिए होती रहे। यह उन पुलिस बल के आंतरिक व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए काफी प्रभावकारी हो सकती है।

पुलिस पदाधिकारियों एवं कर्मियों को मानवीय संवेदना के अनुभव का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। समाजशास्त्र और मानव व्यवहार के मनोविज्ञान, समाज की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दशाओं में परिवर्तन, नैतिक मूल्यों, मन की आदतों, स्व अनुशासन के गुणों, दृष्टिकोण में लचीलेपन आदि में प्रशिक्षण सभी पुलिसकर्मियों के लिए आवश्यक है। यह समय है कि पुलिस के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जाए और पुलिसकर्मियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अवसर एवं प्रोत्साहन दिया जाए। पुलिसकर्मियों को विश्वविद्यालयों में कानून, समाजशास्त्र, समाज कार्य और मनोविज्ञान आदि में सर्टिफिकेट और डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में भेजा जा सकता है। सबसे उपयुक्त तो यह होगा कि यह कोर्स अकादमी द्वारा विश्वविद्यालयों के नियंत्रण में मान्यता प्रदान करके चलाए जाएं। पुलिस विज्ञान प्रशिक्षण की विषय सामग्री में नवीन दृष्टिपात आवश्यक है।

3. व्यवसायवाद

अच्छे पुलिस नेतृत्व की कई विशेषताएं होती हैं। सबसे पहली और प्रमुख विशेषता है व्यवसायवाद। जिसके अंतर्गत ज्ञान एवं निपुणता अर्जन करना शामिल है। हर पुलिस संगठन के नेतृत्वकर्त्ता को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे अपने अधीनस्थों को ज्यादा से ज्यादा ज्ञान अर्जित कराए और उन्हें आम नागरिकों के साथ अपने व्यवहारों में अधिक से अधिक संवेदनशील बनाने हेतु सजग रहे। संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करने, कानून के नियम को कायम रखने तथा नागरिक, जो कि प्रजातंत्र का अंतिम मालिक है, के अधिकारों को सुरक्षित रखने के दौरान होने वाले अनुभव से ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है और निपुणता में भी निखार आता जाता है। एक सच्चे पुलिस नेतृत्व को एक अनुकरणीय आदर्श के रूप में अपने अधीनस्थों का नेतृत्व करना चाहिए और इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने अधीनस्थों की अपेक्षाओं से बढ़कर कार्य कर सके। ज्ञान और निपुणता अर्जन की प्रक्रिया पुलिस प्रशिक्षण संस्थाओं से निकलने के बाद भी जारी रखनी चाहिए। इस संदर्भ में, अधिकतर पुलिस नेतृत्वों द्वारा अध्ययन जारी रखने और न केवल व्यावसायिक मामलों, बल्कि सेवा संबद्ध या गैर सेवा संबद्ध क्षेत्रों में भी, अपने आपको अद्यतन जानकारी से अवगत कराते रहने में जो संकोच है, वह व्यावसायिक उत्कृष्टता को प्राप्त न कर सकने का गंभीर कारण है। उनके द्वारा अच्छा शारीरिक आकार बनाए रखने के प्रति अनिच्छा, लोभ की पिपासा, ईर्ष्या, विकसित देशों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा प्रबंधकीय क्षेत्रों में होने वाले विकास को अपने व्यवसाय में शामिल करने के लिए अधिक रुचि न लेना—ये सभी अड़चने पुलिस नेतृत्व को उत्कृष्ट साबित होने में बाधा डालती हैं।

सभी स्तरों पर भर्ती की प्रणाली पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है। कठोर जांच और वस्तुपरक मूल्यांकन

ही केवल कुशल पुलिस कर्मी उत्पन्न कर सकते हैं। नए प्रवेश करने वाले जवानों के प्रशिक्षण में आधारभूत प्रशिक्षण के साथ-साथ विशिष्टीकरण को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जल्दी-जल्दी और दुर्भावनावश किए गए स्थानांतरण भी पुलिस के मनोबल को प्रभावित करते हैं। स्थानांतरण और प्रोन्नति के मामले गैर-राजनैतिक आयोग को सौंपे जाने चाहिए। स्पष्ट जवाबदेही निर्धारण व्यवस्था तथा हिरासत में मृत्यु के लिए दण्ड दिए जाने और नृशंसता उपयोग किए जाने के सिद्ध हो जाने पर दण्ड दिए जाने की व्यवस्था प्रारंभ की जानी चाहिए।

4. मानव-प्रबंधन

मानव-प्रबंधन पुलिस नेतृत्व का एक अनिवार्य अंग है। कोई भी अनुमान लगा सकता है कि कितने ऐसे पुलिस नेतृत्व हैं, जो अपने अधीनस्थों को नाम द्वारा जानते हैं। अच्छे मानव-प्रबंधन में अधीनस्थों के साथ बराबर का बर्ताव होना चाहिए एवं अपने हितों को अलग रखकर संस्थागत हितों को प्रमुखता दी जानी चाहिए तथा अधीनस्थों को शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। पुलिस नेतृत्व केवल एक पदवी नहीं, बल्कि एक जिम्मेदारी है। इसका उद्देश्य प्रसिद्धि नहीं उद्देश्य को प्राप्त करना है। इसका उद्देश्य अपने स्वार्थ की प्राप्ति नहीं, बल्कि सर्वसामान्य की भलाई है। बल में मिलकर कार्य करने की भावना पैदा करना, वर्दी का गर्व, सेवा परंपरा और अपने अधीनस्थों के कल्याण की सतत भावना—ये अच्छे पुलिस नेतृत्व की निशानियां हैं।

विविध कानूनों द्वारा परिभाषित पुलिस की भूमिका और सामान्य लोगों, जो किसी अपराध के शिकार होने पर पुलिस के पास सहायता के लिए आते हैं, की अपेक्षाओं के बीच बढ़ती हुई खाई को कम करने के तरीकों और कानूनों में सुधार एवं उनके परीक्षण की आवश्यकता है। नागरिक पुलिस की संख्या और प्रशिक्षण तथा साज-सज्जा के अर्थ में पर्याप्त रूप से मजबूत किया जाना आवश्यक है। राजनीतिज्ञों और अफसरशाहों द्वारा पुलिस सुरक्षा प्राप्त करना प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। इस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। पुलिसकर्मी को 24 घंटे का नौकर नहीं माना जाना चाहिए। अतीत में इसका कोई औचित्य रहा होगा, लेकिन आज यह निरर्थक है। काम के घंटों के विषय में एक व्यावहारिक व्यवस्था प्रारंभ की जानी चाहिए ताकि पुलिस कर्मियों की कार्य करने की गुणवत्ता में गिरावट को रोका जा सके।

5. दूरदृष्टि

पुलिस नेतृत्व का एक गुण दूरदृष्टि है। दूरदृष्टि से तात्पर्य है—वर्तमान से परे सोचना, क्या और कब करना चाहिए इसकी जानकारी रखना और काम करवाने की योग्यता होना। अधिकतर अधिकारियों की यह सामान्य शिकायत है कि उनके पास समय नहीं होता, लेकिन यदि उनके द्वारा व्यतीत किए गए समय का अभिलेख रखा जाए, तो ज्ञात होगा कि वे दैनिक दिनचर्या में ही खोए रहते हैं और इस प्रकार उनकी दूरदृष्टि गंभीर रूप से प्रभावित होती है और वे उसका सही उपयोग नहीं कर पाते।

बहुत से पुलिस नेतृत्व यह भी शिकायत करते हैं कि उनके पास उपलब्ध संसाधन—मानव और सामग्री, दोनों अपेक्षित स्तर के नहीं हैं, बिना जरा सोचे हुए कि उनकी यह शिकायत उनकी नेतृत्व क्षमताओं को ही प्रतिबिंबित करती है। दूरदृष्टि रखने वाला नेता मार्गदर्शक होता है, जो संगठन के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु संगठनात्मक संरचना में परिवर्तन लाते हुए तथा लोगों की बदलती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मार्ग बनाता हुआ चलता है और इसके साथ-साथ अधीनस्थों, जिनकी प्रतिभा तथा सृजनात्मकता अधिकतर सुप्त तथा अप्रयुक्त रह जाती है, उन पर विश्वास करके उन्हें शक्तियां प्रदान करता है। आज के युग में जबकि संगठनों का पुनर्निर्माण हो रहा है, दूरदृष्टि रखने वाला नेता अपने में

परिवर्तन द्वारा संगठन में परिवर्तन ला सकता है तथा अपने कार्य का विकास कर सकता है। दूरदृष्टि रखने वाले नेता को अति की परिस्थिति में भी संतुलन बनाना आना चाहिए और अल्पावधि समस्याओं का समाधान करने के साथ-साथ दीर्घावधि रणनीतियों पर भी नजर रखनी चाहिए। दूरदृष्टि रखने वाला नेता इस योग्य भी होना चाहिए कि वह अपने आप को अनुकरणीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत करके भविष्य के लिए नेतृत्व तैयार करे।

6. चरित्र

पुलिस नेतृत्व का एक गुण चरित्र भी है। साहस (नैतिक तथा शारीरिक दोनों), दृढ़ निश्चय तथा पहल —ये चरित्र की विशेषताएं हैं। लोक कार्यकर्ताओं की तरह पुलिस बल के लिए भी सबसे पहली जरूरत है उनका सत्यनिष्ठ होना। वह धन के मामले में सत्यनिष्ठ हों और भ्रष्टाचार से दूर रहें। वे मानसिक रूप से तथा बौद्धिक रूप से भी सत्यनिष्ठ रहें। जो भी कार्य करें सच्चाई और ईमानदारी को ध्यान में रखकर ही। सच्चे और ईमानदार कर्मी के रूप में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करें, तभी वे लोगों का विश्वास अर्जित कर सकेंगे। इंग्लैण्ड की पुलिस को वहां की जनता अपना मित्र समझती है, क्योंकि वे लगातार अपनी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी से लोगों में एक विश्वास अर्जित कर लिया है। भारत में भी भारतीय पुलिस को ऐसी प्रतिष्ठा अर्जित करने की दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है। जिसके लिए हर पुलिस बल के नेतृत्वकर्ता सदा जागरूक और प्रयत्नशील रहें। पुलिस बल का मूल्यांकन उसकी सत्यनिष्ठा, कार्यकुशलता और चातुर्य से किया जाता है। पुलिस बल देश की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और उस पर भावी उत्तरदायित्व है। उन्हें बल प्रयोग में भी संयम दिखाकर अपने उच्च कोटि के चरित्र को प्रदर्शित करना चाहिए। ऐसा करने से वे जनसद्भाव प्राप्त कर सकेंगे। बिना जनसद्भावना और सहयोग के सफल पुलिस नेतृत्व नहीं कहा जा सकता है।

शारीरिक खतरे का सामना करना शारीरिक साहस है और अप्रसिद्धि के बावजूद, चुने हुए सही पथ पर अग्रसर रहना नैतिक साहस है। दृढ़ निश्चय से तात्पर्य हठ से नहीं है बल्कि कुछ कर दिखाने का साहस और अपने पर किया गया विश्वास ही दृढ़ निश्चय है। पहल के अंतर्गत प्रत्याशा और पूर्व-नियोजन शामिल है। पुलिस नेतृत्व के चरित्र में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह उसे दृढ़निश्चयी और सहृदय बनाए। बहुत कम पुलिस अधिकारी हमारे देश की पुलिस आचरण नियमावली के बारे में जागरूक हैं। इसीलिए अच्छे पुलिस नेतृत्व का निर्माण करने में सहायक, नैतिक चरित्र संबंधी सात गुणों को वे अपने संगठन में प्रतिरोपित करें। वे हैं : विवेक, दृढ़-विश्वास, सहिष्णुता, अटलता, सत्यनिष्ठा (आर्थिक और बौद्धिक दोनों), विश्वसनीयता तथा अंतर्दृष्टि।

7. अधीनस्थों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने की शक्ति प्रदान करना

ऐसा देखा जाता है कि शक्ति के विकेंद्रीकरण के अभाव में निचली पंक्ति के पुलिस पदाधिकारी अथवा कर्मी किसी आपात स्थिति से निपटने में कानून के अनुसार भी कार्य इस आधार पर नहीं कर पाते हैं कि उन्हें वरीय पदाधिकारी से आदेश प्राप्त करने हैं। वे किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में रहते हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि उनके अधिकार की सीमा क्या है। पुलिस नेतृत्व को इसे स्पष्ट कर देना चाहिए ताकि उन्हें कोई संकोच कानून सम्मत कार्रवाई करने में न हो। भारतीय कानून स्पष्ट है तथा सी.आर.पी.सी. हर पुलिस कर्मी के कर्तव्य को परिभाषित किए हुए है। उसकी पूरी जानकारी निचली पंक्ति के पुलिस कर्मी को पुलिस नेतृत्व को अवश्य देकर रखनी चाहिए। पुलिस नेतृत्व का भी एक अंग है—विकेंद्रीकरण द्वारा अधीनस्थों को शक्ति प्रदान करना। यह सर्व ज्ञात है कि पुलिस एक केंद्रित संगठन है, जहां पुलिस नेतृत्व एक

दूसरे पर बेवजह शक करते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप उनको प्राप्त शक्तियों को दूसरों में बांटने का साहस नहीं कर पाते। पुलिस श्रेणीबद्धता में एक प्रवृति, जो अधिकतर दिखाई देती है, वह यह है कि किसी भी दी गई परिस्थिति में प्रत्येक कर्मचारी अपने वरिष्ठ अनुदेशों की प्रतीक्षा करता रहता है और जिम्मेदारी दूसरे पर डालकर स्वयं सुरक्षित रहता है। इस अवांछित परिस्थिति का समाधान विकेंद्रीकरण और अधीनस्थों को शक्तियां सौंप कर किए जाने की आवश्यकता है। किसी पुलिस नेतृत्व की व्यक्तिगत अकांक्षा को उसे अपने कैरियर में परिवर्तित नहीं करना चाहिए बल्कि प्रत्येक स्तर पर जवाबदेही के मानक निर्धारित करके उनका सख्ती से पालन करवाया जाना चाहिए। इस प्रकार की स्पष्टता की स्थिति में ही पुलिस निर्भीकता से कार्य करने में समर्थ हो पाएगी तथा पुलिस की उपलब्धि और ख्याति भी समाज में बढ़ेगी।

8. संवेदनशीलता

हम अगली सहस्त्राब्दी में प्रवेश कर रहे हैं और पुलिस के सामने कई चुनौतियाँ हैं। पुलिस नेतृत्व की भूमिका अत्यंत संकटमय है, क्योंकि उसको पुलिस की छवि को परिवर्तित करना है, जिसमें पुलिस को सरकार के हाथ में उपलब्ध जुर्म करने वाले औजार का समानार्थी समझा जाता है। इस पर्याय को पुलिस नेतृत्व के सेवा संगठन में परिवर्तित करना होगा और तब इसकी जनोक्ति होगी—संवदेनशीलता। हमारा जीवन मूल्य अच्छे आचरण पर निर्भर करता है। हमारी वृत्तियां, हमारी मानसिकता, हमारे आचरण, हमारे प्रयास तथा हमारे समस्त निर्णय उसी पर निर्भर करते हैं। शिष्टाचार की जागृति हेतु व्यक्ति को अहंकार का गमन और विवेक को जागृत करना चाहिए। क्रियान्वयन की वाणी शिष्टाचार का मूल मंत्र है। वाणी मनुष्य जाति का वह वरदान है जिसके माध्यम से वह अपने विचारों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। यह हमेशा मधुर एवं कोमल होना चाहिए, इससे कोई हानि नहीं है, बल्कि हम प्रशंसा के पात्र बन सकते हैं। अप्रिय वाणी एवं व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए। वाणी और कर्म दोनों ही संवेदनशीलता के मौलिक मंत्र हैं। इससे हम दूसरों के दिल को जीत सकते हैं तथा समाज में प्रतिष्ठा हासिल कर सकते हैं। पुलिस अधिकतर रुखा व्यवहार करती है, जो हमेशा संवेदनशीलता के प्रतिकूल है। आचरण में सुधारकर अच्छे मानक को प्राप्त कर सकें इसके लिए पुलिस नेतृत्व को हर समय, हमेशा सचेत रहना चाहिए। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि "पुलिस अपने कार्यों का संपादन संतोषप्रद ढंग से तभी कर सकती है जब आम जनता और पुलिस परस्पर एक दूसरे के साथ सद्भावपूर्वक सहयोग करे और साथ ही एक दूसरे का आदर करे।" इसके लिए आवश्यकता है सही समय में सही कदम उठाने की, आत्मबल की, दृढ़ता और दृढ़-निश्चयता के साथ आगे बढ़ने की।

9. सुखी परिवार

आज ऐसा देखा जा रहा है कि कार्यभार से दबी पुलिस बल के लगभग सभी पदाधिकारी और कर्मी तनावपूर्ण जिंदगी जी रहे हैं। उन्हें समय पर अवकाश भी नहीं मिल पाता है तथा वे अपने पारिवारिक जिम्मेवारी को निभाने में असमर्थ महसूस करते हैं। जहां उनका दामपत्य जीवन प्रभावित होता है, वहीं उनके बच्चों की पढ़ाई भी कुप्रभावित होती है। काम करने के घंटे अधिक होने के कारण उनके स्वास्थ्य में भी गिरावट जल्दी ही आ जाती है। इन कारणों के वजह से आज न सिर्फ पुलिस के सिपाही संवर्ग के ही लोग, बल्कि पुलिस पदाधिकारी भी आत्महत्या अत्यधिक तनाव की स्थिति में कर रहे हैं। यह एक बहुत ही खौफनाक दृश्य पुलिस बल में समाविष्ट हो गया है। ऐसे भी दृष्टांत हैं जब सिपाही अपने वरीय पदाधिकारियों की हत्या ड्यूटी गन से कर देते हैं और स्वयं ही गोली मारकर असमय कालकल्वित हो जाते हैं। पुलिस नेतृत्व को इसे गंभीरता से लेते हुए पुलिसकर्मियों को अधिक से अधिक सुख सुविधा

देने की दिशा में अग्रसर रहें। एक अच्छे पुलिस नेतृत्व के निर्माण में सहायक सुखी परिवार की भूमिका को न तो नजर अंदाज किया जा सकता है, न ही उस पर अधिक बल दिया जा सकता है। यह चिंता का विषय है कि हम आजकल ऐसे आत्मघात के किस्से सुनते हैं, जहां पुलिस अधिकारी अपने जीवन निर्वहण में असमर्थ रहते हैं। ऐसे में जीवन साथी का सहारा और बच्चों का आनंद निःसंदेही उस कुशन का काम करता है, जिसका सहारा, गिरते समय चोट से रक्षा करता है। पुलिस नेतृत्व को जहां अनुशासन के मामले में कड़ाई से पेश आएँ, वहीं अपने अधीनस्थों से विचारों का आदान प्रदान निःसंकोच भाव से करे और उनसे आत्मीयता से बातें करने से ही अधिनस्थों के तनाव कम किए जा सकते हैं। इसके लिए पुलिस नेतृत्व अपने शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक गुणों को अपनाएं तथा वे अधिनस्थों की सुख-सुविधा के लिए संवेदनशील रहें।

आशा है आरक्षियों में सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता एवं बौद्धिक स्तर को ऊँचा करने के लिए एक सफल एवं स्वच्छ प्रशिक्षण प्रणाली की व्यवस्था देश के हर राज्य में राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की तर्ज पर की जाएगी जहां पुलिस कर्मियों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से अवगत कराते हुए उच्च कोटि का प्रशिक्षण दिया जाएगा। उनमें सफल नेतृत्व करने का नैतिक बल, परिस्थितियों के पुकार के अनुरूप कार्यरत रहने की धुन पैदा की जाएगी जिससे लोगों में पुलिस के प्रति अटूट विश्वास, श्रद्धा और पूर्ण सहयोग की भावना सुदृढ़ हो सके। रूढ़ीवादी निरंकुश नियंत्रण एवं लोगों के साथ आरक्षियों के रूखे व्यवहार का अविलंब अंत हो तथा प्रेम, स्नेह और सौहार्द की त्रिवेणी लोगों की समस्याओं का सही निराकर हेतु प्रवाहित हो। पुलिस की कार्य प्रणाली साफ, स्पष्ट और पारदर्शी हो, ताकि समाज के लोग उनके कठिन परिश्रम को समझ सकें। पुलिस के नेतृत्व जाति एवं सांप्रदायिक संकीर्णता एवं राजनीतिक गलियारों की संकीर्ण परिधि से हटकर समग्रता, उदारता, तटस्थता और व्यापकता का परिचय देते हुए सफेदपोश अपराधियों और असामाजिक तत्वों के विरुद्ध निसंकोच और निडर भाव से करते हुए प्रभावकारी ढंग से अग्रतर कार्रवाई कर सके, जिसमें ईमानदारी उनका पहला लक्ष्य हो।

संदर्भ

1. बदलते समाज में आरक्षियों का दायित्व—एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, उमेश कुमार सिंह, पुलिस विज्ञान, वर्ष—20, अंक—84, जुलाई—सितम्बर 2003
2. पुलिस प्रशासन में गुणात्मक सुधार : डा. सी. अशोक बर्द्धन, भा. प्र. से.।
3. पुलिस विज्ञान, वर्ष—4, अंक—13, सितम्बर-नवम्बर, 1985
4. विवेचनात्मक अपराधशास्त्र, राम अहूजा, मुकेश अहूजा, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1998
5. पुलिस और समाज : डा. अखिलेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1995
6. पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता : डा. सी. अशोक बर्द्धन, पु.अ.वि. ब्यूरो, गृह मंत्रालय।
7. भारतीय पुलिस : परिपूर्णानंद वर्मा।
8. भारतीय पुलिस का इतिहास : डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी।
9. ग्रामीण पुलिस समस्याएं एवं समाधान : श्री रामलाल विवेक।
10. Police Administration-Organization and Procedure by S.K. Ghosh.
11. Diaz, S.M., : To Police Role and Functions in India.
12. C.B.I. Bulletin Vol-vi, No-2, Feb. 1998.

❑

लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं पुलिस प्रशासन

डा. (श्रीमती) अनुपम शर्मा

वरिष्ठ प्रवक्ता—राजनीति विज्ञान
इस्माईल नेशनल पी.जी. कालिज, मेरठ।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ-साथ लोक कल्याणकारी राज्य के स्वरूप को स्वीकार किया गया। इस स्वरूप के स्वीकार करने के परिणामस्वरूप सरकार के प्रत्येक विभाग के कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, पुलिस के बढ़े कार्य भी इसी का परिणाम हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व पुलिस को उपनिवेशीय व्यवस्था को बनाए रखना तथा शासक वर्ग को जनता से दूर रखने की भूमिका का निर्वाह करना पड़ा तो स्वतन्त्रात्तोर काल में समस्याओं का स्वरूप ही नहीं बदला बल्कि विभिन्न कारणों से इनमें कई गुणा वृद्धि भी हुई है। अब पुलिस को हमारे संविधान में दिए गए सिद्धांतों के अनुपालन से संबद्ध समस्याओं तथा प्रजातन्त्र की रक्षा से जुड़ी अनेक व्यवस्थाओं के कार्यान्वयन के लिए पुलिस को हर समय व्यस्त तथा कार्यरत बना रहना पड़ता है। कानून व्यवस्था बनाए रखने, अपराधों को रोकने एवं उनकी जांच करने, साम्प्रदायिक दंगे, भाषा के नाम पर क्षेत्रवाद, बेरोजगार, औद्योगिक अशांति, आन्तरिक असुरक्षा, बढ़ती महंगाई, आतंकवाद, नागरिक सुविधाओं की कमी, अग्निकाण्ड, भूकम्प, चक्रवात, महामारी, निम्न व कमजोर वर्गों के लोगों के ऊपर अत्याचार आदि ऐसी अनेक विकारात्मक समस्याएं हैं जिनसे समाज में अराजकता और विद्रोह की स्थिति, अशांति एवं अव्यवस्था का वातावरण चारों ओर दिखलायी देता है, इन सभी समस्याओं के कारण पुलिस का कार्यभार बढ़ता गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात लोगों की व्यवस्था से अपेक्षाओं में भी वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में पुलिस से भी आम व्यक्ति की अपेक्षा बढ़ी है।

पुलिस किसी भी देश का एक शक्तिशाली संगठन है जो समाज विरोधी कार्य करने वाले अपराधियों व संस्थाओं पर नियंत्रण लगाकर सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन में प्रमुख भूमिका अदा करता है सदरलैण्ड ने पुलिस की भूमिका के तीन महत्वपूर्ण पहलू बतलाए हैं। (1) पुलिस राज्य सत्ता के एजेंट व प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। (2) इसका कार्य कानून तथा व्यवस्था को स्थापित रखना है। (3) पुलिस का कार्य अपराध संहिता को लागू करना है तथा अपराधियों के विरुद्ध कानूनी प्रक्रिया चलाना है। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात औद्योगीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन की गति बहुत तेज हो गई है। प्रजातन्त्र के साथ-साथ भारत में लोक हितकारी राज्य स्थापित करने का संकल्प किया गया जिसमें जनता के सभी लोगों को सामाजिक व राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके। इस प्रकार के बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवेश में पुलिस की भूमिका भी कठिन हो गई है। "जब कभी समाज में परिवर्तन होता है तो पुलिस के लिए नये प्रकार के दबाव और नई मांगें खड़ी हो जाती हैं। तेजी से परिवर्तित होने वाले समय में परिवर्तन की तेज गति के कारण स्थितियां बहुत कुछ भ्रामक और अस्त-व्यस्त हो जाती हैं और पुलिस के सामने जिस प्रकार की मांग आ जाती है वह बहुत कुछ एक-दूसरे से भिन्न प्रकार की बन जाती है।"

वर्तमान में पुलिस का कार्य केवल कानून व्यवस्था बनाए रखना ही नहीं अपितु वे सभी विकासात्मक कार्य करना भी है जिनकी उससे अपेक्षा की गई थी परन्तु वर्तमान में ऐसा आभास हो रहा है कि पुलिस इन कार्यों को करने में पूर्ण रूप से सक्षम नहीं है अथवा उसमें इच्छा शक्ति का अभाव है। लोकतांत्रिक विशेषताओं की पुलिस व्यवस्था में ढूंढने से आभास होता है कि इन विशेषताओं का पुलिस व्यवस्था में अभाव है।

आधुनिक समय में लोकतंत्र का अर्थ जनता का जनता के द्वारा जनता के लिए शासन के साथ-साथ एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की शासन एवं प्रशासनिक क्रियाओं में सहभागिता हो अर्थात प्रत्येक व्यक्ति निर्णय प्रक्रिया में अपनी सहभागिता रखता हो। सरकार जनता के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी हो अर्थात उत्तरदायी सरकार हो। सरकारी एवं प्रशासनिक स्तर पर पारदर्शिता हो अर्थात जनता को अपने ऊपर पड़ने वाले निर्णयों के प्रभाव की जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। कानूनों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में पूर्ण पारदर्शिता होनी चाहिए इसके साथ-साथ सरकारी कार्यों में प्रभावशीलता एवं प्रभावकारिता भी होनी चाहिए। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन विशेषताओं का परीक्षण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

पारदर्शिता को यदि पुलिस विभाग में देखें तो इसका हमें अभाव देखने को मिलता है। थाना स्तर पर या ऊपरी स्तर पर जो भी निर्णय जनता से सम्बंधित लिए जाते हैं उनमें जनता को कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। पीड़ित व्यक्ति यदि कोई अपनी एफ.आई.आर. या अपने से जुड़े किसी भी मामले में सूचना प्राप्त करना चाहता है तो उसे उससे सम्बंधित सूचना मिलना न केवल कठिन बल्कि असम्भव सा प्रतीत होता है। यद्यपि सूचना के अधिकार—2005 के तहत नागरिकों को सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया है परन्तु इसकी सफलता व्यक्तियों के जागरूक होने और उससे सम्बंधित जानकारी होने पर ही निर्भर करती है।

पुलिस की कार्य प्रणाली में सहभागिता की विशेषता का अभाव पाया जाता है। थाने स्तर पर अपराध नियंत्रण व कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए जो भी निर्णय लिए जाते हैं, उनमें जनता की सहभागिता नहीं पाई जाती है। इसलिए पुलिस के लिए अपराध नियंत्रित करना, कानून व्यवस्था बनाए रखना आदि कार्यों को करने में अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है जिससे अधिक समय व धन की आवश्यकता होती है। पुलिस को अपने कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए जनता की सहभागिता लेनी चाहिए।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इसी प्रकार अन्तोगत्वा पुलिस भी जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। परन्तु व्यवहार में यह प्रतीत होता है कि पुलिस जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर जनता के प्रतिनिधियों के प्रति या विभाग में उच्च अधिकारियों के प्रति ही केवल उत्तरदायी होती है। जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का पुलिसकर्मियों व अधिकारियों में अभाव पाया जाता है।

पुलिसकर्मियों का उच्च अधिकारियों व राजनीतिज्ञों के प्रति उत्तरदायी होने का एक प्रमुख कारण इनकी सेवा संबंधी तबादला व प्रोन्नति संबंधी शक्तियां इनके हाथों में होना है। पुलिसकर्मियों का वर्तमान तबादला व नीति इस बात की तरफ इंगित करती है कि पुलिस विभाग में इस संबंध में कोई स्पष्ट दिशा निर्देश नहीं हैं। अधिकारी व राजनीतिज्ञ अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पुलिसकर्मियों के तबादले शीघ्र करते रहते हैं, ऐसी स्थिति में पुलिस विभाग में पारदर्शिता का अभाव पाया जाता है। पुलिस कर्मियों को बिना ठोस कारण बताए उनका तबादला एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर दिया जाता है। जिससे पुलिसकर्मियों को अनावश्यक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इसलिए व्यवहार में पुलिस विभाग में उत्तरदायिता जनता के प्रति दिखाई न देकर राजनीतिज्ञों व पुलिस अधिकारियों के प्रति दिखलाई देता है।

पुलिस की कार्य प्रणाली मूलतः जनता को साथ चलकर लेने वाली न होकर उससे दूरी बनाए रखना है। पीड़ित व्यक्ति अपने प्रति घटी घटना/अपराध को दर्ज करने की अपेक्षा उसको सहना अधिक पसंद करता है क्योंकि आम व्यक्ति के मन में पुलिस की छवि ऐसी बनी है कि पुलिस के पास जाकर उसकी समस्या को कोई

सुनने वाला नहीं होता और उसके साथ भी सामान्य गरिमामयी नागरिक जैसा व्यवहार न होकर एक अपराधी जैसा व्यवहार किया जाता है यहां पर वर्ष 2006 का मेरठ का उदाहरण उद्धृत करना सारगर्भित होगा जिसमें पुलिस महानिदेशक द्वारा मेरठ शहर के कुछ थानों का निरीक्षण किया गया था पुलिस महानिदेशक स्वयं एक पीड़ित बनकर थानों में रिपोर्ट लिखाने गए लेकिन कई थानों में उनको अपनी रिपोर्ट लिखवाने में सफलता नहीं मिली एवं उनके साथ सम्मानजनीय व्यवहार भी नहीं किया गया। परन्तु एक थाने में उनको पूरा सम्मान दिया गया और उनकी एफ.आई.आर. भी लिखी गई। महानिदेशक ने उस कान्सटेबल को ईनाम की घोषणा की और हौसला वर्धन किया। इस घटना से यह आभास होता है कि आम व्यक्ति से पुलिस थानों में किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार की घटनाएं पुलिस थानों में सामान्यतः घटती हैं जिससे पीड़ित व्यक्ति इन थानों में जाने से घबराता है। भारत में इन परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए प्रजातान्त्रिक विशेषताओं को संग्रहीत करना चाहिए इसके लिए पुलिस स्तर एवं समुदाय स्तर पर भी प्रयास किए जाने चाहिए। प्रथमतयाः पुलिस कार्यों में पारदर्शिता परिलक्षित होनी चाहिए जिससे जनता को अपने कार्यों की गति के बारे में सूचना प्राप्त होनी चाहिए। पुलिस विभाग में भी पारदर्शिता होनी चाहिए जिससे निर्णय निर्माण एवं क्रियान्वयन के बारे में सभी को आवश्यक जानकारी उपलब्ध हो सके।

पुलिस को लोकतान्त्रिक समय में जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए तथा बाद में जनता के प्रतिनिधियों एवं विभाग के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। उत्तरदायित्व की भावना पुलिस को जनता में विश्वास पैदा करने में सहायता प्रदान करेगी और जनता का पुलिस सहयोग प्राप्त करने में सफल होगी।

पुलिस को कानून अपराध नियंत्रण एवं कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए जनता की सहभागिता प्राप्त करनी चाहिए। प्रत्येक गांव, मौहल्ले तथा क्षेत्रों में पुलिस की सहायता के लिए क्षेत्रीय सुरक्षा समितियां अथवा शांति कमेटी गठित होनी चाहिए जिससे जनता को पुलिस के साथ कार्य करने का अवसर मिले। जनता की सहभागिता इन सभी कमेटियों में सक्रिय बनाने के लिए पुलिस तथा जनता के संबंध सुधारने चाहिए। पुलिस का जनता से अच्छा संबंध बनाने के लिए पुलिस कर्मचारियों को अपने व्यक्तिगत व्यवहार व आचरण में आवश्यक परिवर्तन लाना पड़ेगा सभी स्तरों पर पुलिस अधिकारियों को जनता से अच्छे संबंध रखने पर जोर दिया जाना चाहिए। पुलिस को जब तक जनता के हर वर्ग से पूरा सहयोग प्राप्त नहीं होता है जब तक पुलिस अपनी सही भूमिका प्रजातांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राज्य में सही ढंग से नहीं कर सकती है। जनता के सभी वर्गों के व्यक्ति अपने जीवन, सम्पत्ति और सुरक्षा के प्रति तभी आश्वस्त हो सकते हैं जब वे पुलिस को अपनी यथोचित भूमिका निभाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। पुलिस जनता का ही भाग तथा जनता के सामुदायिक कर्तव्यों का प्रतीक है। पुलिस को केवल सामाजिक नियंत्रण को एक लोकतान्त्रिक साधन माना जाना चाहिए न कि सत्ता का प्रतीक। व्यक्तिगत स्तर पर पुलिस के सिपाही तथा थाना अधिकारी ही पुलिस के प्रतिनिधि के रूप में सामान्यतः जन साधारण के संपर्क में आते हैं तथा उनका व्यवहार व आचरण ही जनसाधारण से पुलिस के संबंध स्थापित करता है। जनता को पुलिस की भूमिका उसकी कठिनाइयों, समस्याओं, व संरचना के बारे में पूरी जानकारी कराई जानी चाहिए ताकि जनता अपनी पुलिस को भली भांति समझ सके। श्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि पुलिस का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह जनता की सद्भावना व सहयोग प्राप्त करे जो उसे केवल जनता की सेवा और जनता के साथ अच्छा व्यवहार करने पर ही मिल सकता है। पुलिस अधिकारी अपना कर्तव्य तभी पूरा कर सकते हैं जब उनके हृदय में देश तथा जनता के प्रति सेवा की भावना हो।"

पुलिस के अन्दर जब यह भावना विकसित होगी तभी वास्तव में लोकतान्त्रिक मूल्यों को व्यवहार में लाया जा सके। पुलिस आज के समय में जनता से दूरी बनाकर कार्य नहीं कर सकती जैसा कि स्वतन्त्रता से पूर्व पुलिस का प्रमुख उद्देश्य था परन्तु वर्तमान में बदलती परिस्थितियों, बढ़ते अपराधों, अपराधों की बदलती प्रकृति, कानून व्यवस्था की जटिल होती प्रक्रिया ने यह सिद्ध कर दिया कि पुलिस जनता के साथ मिलकर ही पुलिस अपनी भूमिका को सही प्रकार से निभा सकती है और लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना में अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह कर सकती है।

संदर्भ

माथुर, कृष्ण मोहन, 'एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ पुलिस ट्रेनिंग इन इण्डिया', प्रकाशक ज्ञान पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली, 1987

माथुर, कृष्ण मोहन, 'प्राब्लम्स ऑफ पुलिस इन ए ड्रेमोक्रेटिक कन्ट्री, आर.वी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर

मेहता, पी., 'एफीकेसी, पारटीसिपेशन एण्ड पालिटिक्स', नई दिल्ली, नेशनल लेबर इन्स्टीट्यूट, 1975

तनेजा, पुष्पलता, 'भारतीय प्रजातन्त्र और पुलिस', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997

शर्मा, ब्रजमोहन, 'भारतीय पुलिस', पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1984

भूषण, पी.एस., 'पुलिस और समाज', मनीषा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1998

समाचार पत्र, अमर उजाला

समाचार पत्र, दैनिक जागरण

❑

मानवाधिकार और मुख्य दिशा निर्देश गैर-सरकारी संगठनों का मानवाधिकारों के कार्य में योगदान

मीना मल्होत्रा

सी—12/452, यमुना विहार, दिल्ली—110053

यह छिपी हुई बात नहीं है कि केवल सरकार अकेली मानवाधिकारों की रक्षा नहीं कर सकती। राज्य को चलाने के लिए नागरिकों तथा गैर सरकारी संगठनों का सकारात्मक एवं क्रियात्मक योगदान महत्वपूर्ण है। कोई भी संगठन जो सरकार के पास पंजीकृत है या जो संगठन सार्वजनिक कल्याण के लिए नियमित रूप से कार्यरत है, गैर-सरकारी संगठन के रूप में स्वीकार्य हो सकता है। महिला संगठनों के सहयोग से गुजरात तथा आंध्र प्रदेश में पुलिस नशाबंदी लागू करने तथा नशीले पदार्थों की बिक्री पर अंकुश लगाने में सफल हो सकी है।

बहुत से महिला संगठनों तथा समाज सुधारकों के सहयोग से दहेज की भयानक सामाजिक बुराई कुछ हद तक कम करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है। इन संगठनों के सतत प्रयासों के कारण ही दहेज प्रथा निवारण अधिनियम बनाया गया है तथा 1994 में सती-प्रथा निवारण अधिनियम में संशोधन किया गया है क्योंकि भारतीय समाज में स्त्रियों के अधिकारों पर कुठाराघात होता रहता है तथा कदम-कदम पर उनका शोषण होता रहता है, यही कारण है कि महिलाओं के अनेक संगठन उनके अधिकारों की रक्षा के लिए सक्रिय है तथा सरकार पर दबाव बनाते रहते हैं। 'प्रयास' तथा 'नया प्रयास' जैसी संस्थाओं के माध्यम से हमारी दिल्ली पुलिस भी बेसहारा छोटे बच्चों के अधिकारों को सुरक्षित रखने में एक महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। 'प्रयास' संस्था बच्चों को अपराध की ओर अग्रसर होने से रोक रही है तथा उनके सर्वांगीण विकास में लगी हुई है।

अभिप्राय यह है कि जब तक यह संगठन सक्रिय नहीं हुए थे, बच्चों तथा स्त्रियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार होते रहते थे तथा उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता था परंतु जब से सार्वजनिक हित के मामलों में ये संगठन न्यायालय की शरण लेने लगे हैं, समाज भी इनके अधिकारों को मानने और आदर करने के लिए बाध्य हुआ है।

हथकड़ी लगाने के विषय में मार्ग-दर्शन

जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखने के लिए कहा गया है, इस विषय में माननीय उच्चतम न्यायालय ने 'प्रेम शंकर' के मामले में 1990 में 1535-1537 पृष्ठ पर निर्देश दिए हैं कि पुलिस हिरासत में रखते समय व्यक्ति के व्यक्तिगत सम्मान को ठेस नहीं पहुंचाएगी, न ही उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाएगा। पुलिस को हमेशा मानवाधिकारों के 1948 के अधिनियम की 'धारा-5' को हमेशा अपने ध्यान में रखना चाहिए।

किसी का भी हिंसा के द्वारा, अत्याचार करके या अमानवीय रूप से न शोषण होगा न सजा दी जाएगी। सुनील बतरा मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने 1980 में 1601, 1603 पृष्ठ पर साफ किया है कि हमारे अधिवक्ता व न्यायालय मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों में अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों के अधिनियम के प्रावधानों को अवश्य ध्यान में रखेंगे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के अनुसार यह राज्यों का कर्त्तव्य है कि वह अंतर्राष्ट्रीय कानूनों को बढ़ावा दें। अतः पुलिस को मुख्य कानून लागू करने वाली संस्था होने के नाते इन

निर्देशों का ध्यान रखना चाहिए।

स्थायी आदेश संख्या-44 तथा पी.पी.आर 18.30, 18.35, 26, 23 व 26, 24 में हथकड़ी लगाने के प्रावधान बताए गए हैं। जहां हथकड़ी लगाना अनिवार्य हो वहां इसकी आवश्यकता का ब्यौरा दैनिक डायरी में दर्ज किया जाना चाहिए। अधिक खतरनाक तथा खराब रिकॉर्ड वाले व्यक्तियों को हथकड़ियां लगाई जाएं। न्यायविदों, वकीलों, डाक्टरों, लेखकों, शिक्षाविदों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों को हथकड़ी नहीं लगानी चाहिए।

हिरासती हिंसा

गिरफ्तारी का अर्थ है सक्षम अधिकारियों द्वारा किसी नागरिक की दैहिक स्वतंत्रता को छीनना। जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाता है और जब तक उसे जमानत नहीं मिलती, वह हिरासत में समझा जाता है या दूसरे शब्दों में वह व्यक्ति हिरासत में होता हे। इस दौरान उस व्यक्ति के प्रति बल प्रयोग, धमकी, मनोवैज्ञानिक दबाव आदि का नाम हिरासती हिंसा है। ऐसी हिंसा के अनेक कारण है, जैसे—सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, व्यावसायिक तथा प्रशासनात्मक आदि। कई बार यह हिंसा हिरासत में रखने वाले की मनोवैज्ञानिक या सामाजिक तथा व्यंजन संबंधी मानसिकता पर भी आश्रित होती है तथा कई बार घृणा के वशीभूत होकर भी व्यक्तियों के प्रति हिरासत के दौरान हिंसात्मक रवैया अपनाया जाता है।

हिरासत में हिंसा अपराधों की जांच पड़ताल में जानकारी प्राप्त करने के लिए, अपराध मनवाने के लिए तथा सम्पत्ति व अन्य तथ्य जानने के लिए एक साधारण सी बात है क्योंकि हिंसा के माध्यम को सबसे छोटा रास्ता माना जाता है।

राजनैतिक हिंसा के मामलात में जैसे उग्रवाद व आतंकवाद से निपटने और कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए भी हिरासती हिंसा का सहारा लिया जाता है। कई मामलात में कारगर कानून न होने के कारण पुलिस ऐसी विघटनकारी तथा हिंसा पर आमादा शक्तियों को समाप्त कर देती है जो अमानवीय है तथा गैरकानूनी भी। यह किसी भी लोकतंत्र पर एक कलंक है। अतः पुलिस को ऐसे कार्यों से परहेज करना चाहिए।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को अनुच्छेद-20 में अपराधीकरण के विरुद्ध संरक्षण दिया गया है। धारा-354 भारतीय दंड संहिता "किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाएगा कि वह स्वयं के विरुद्ध साक्षी दे" अर्थात् वह अपने अपराध को स्वीकार करे। भारतीय पुलिस अधिनियम में भी पुलिस अधिकारियों द्वारा हिरासत में बल प्रयोग या अन्य प्रकार की यातनाएं वर्जित हैं। हिरासत में बलात्कार के मामलात में सजा के विशेष प्रावधान बनाए गए हैं। पुलिस अधिकारियों द्वारा हिरासत में यातनाएं देने के मामलों की रिपोर्ट मिलने पर सजा तथा प्रशासनिक विभागीय कार्रवाई होने के प्रावधान है।

अतः यह स्पष्ट है कि हिरासत में यातनाएं देना पुलिस के लिए गैर-कानूनी तो है ही साथ ही साथ यह अमानवीय भी है। अतः कानून के रखवाले को यह शोभा नहीं देता। इस प्रकार की कार्रवाई से पुलिस की बर्बर छवि बनती है, व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुंचाती है तथा पुलिस जनता का विश्वास खोती है। इसी आधार पर न्यायपालिका की दृष्टि में भी पुलिस की छवि गिरती है लेकिन फिर भी हमारे पुलिस अधिकारी हिरासत में रखे गए व्यक्ति के प्रति हिंसा का बर्ताव करते हैं क्योंकि वे इसे एक आसान व प्रभावशाली तरीका मानते हैं। इसका कारण कानून और व्यवस्था की स्थिति बनाए रखना, काम का दबाव तथा पर्याप्त बल का न होना भी सहायक है क्योंकि आजकल पुलिस को बहुउद्देश्यीय कर्तव्यों का निर्वाह करना पड़ता है तथा समय का अभाव है।

भीड़ नियंत्रण और मानवाधिकार

भीड़ को नियंत्रित करते समय तथा गैर-कानूनी

सभाओं का प्रबंध करते समय प्रायः पुलिस द्वारा बल प्रयोग मानवाधिकारों के उल्लंघन के अनेक मामले सामने आते हैं। इन मामलात में आमतौर पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज करना तथा कई बार गोली भी चलाना पुलिस की बर्बर कार्रवाई मानी जाती है। पुलिस बर्बरता का अमानवीय कार्य सन् 1980 के दशक में बोट क्लब पर अंधे प्रदर्शनकारियों पर किया गया लाठीचार्ज था।

1960 के दशक में अमेरिका की पुलिस द्वारा दंगाइयों की धर-पकड़ में अपनाया गया भेद-भावपूर्ण रवैया मानव-अधिकारों के उल्लंघन का एक ऐसा ही उदाहरण है। पुलिस के दुर्व्यवहार के कारण साधारण व्यक्ति भी जिनका दंगों में हाथ नहीं था, उग्र हो गए तथा गिरफ्तारियों में रुकावटें डाली तथा आम जनता सड़क पर आ गई।

किसी भी समय समाज में बल प्रयोग को कभी भी स्वीकार नहीं किया जाता तथा इसकी विपरीत प्रक्रिया होती है। अतः पुलिस आचार संहिता व संयुक्त राष्ट्र संघ की आचार संहिता में बल प्रयोग के विषय में संयम पर जोर दिया गया है तथा कम से कम बल प्रयोग हालात के अनुसार करने का ही निर्देश दिया गया है।

कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए भी तथा गैर-कानूनी वस्तुओं का नियंत्रण करते समय पुलिस को जान व माल की रक्षा तथा सुरक्षा करते समय संयम रखते हुए उचित बल प्रयोग करना चाहिए।

कई बार ऐसी परिस्थितियों में यह भी देखने में आया है कि भीड़ छंटने का नाम ही नहीं लेती। जहां तक संभव हो पुलिस अधिकारियों को अपनी वाक-पटुता, हास्य-विनोद, उपदेश तथा नेक सलाह देकर गहरी सूझ-बूझ के साथ भीड़ से निपटना चाहिए। धारा-129 भा.दं.सं. के अंतर्गत कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जान व माली नुकसान न होने देने के लिए कम से कम बल प्रयोग किया जाए। धारा 130 भा.दं.सं. के अंतर्गत बल प्रयोग द्वारा लोगों को कम से कम चोट आए। भीड़ में से लोगों को पकड़ा भी जाए ताकि वे हतोत्साहित हो जाए।

किसी भीड़ अथवा गैर-कानूनी सभा को तितर-बितर करने के लिए सबसे अच्छा उपाय पानी की धारा, आंसू गैस, रबड़ की गोलियां, लाठी चार्ज अच्छे तरीके हैं। गोली चलाना अंतिम उपाय है, इससे बचना चाहिए। लेकिन कई बार गोली चलाना आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा-46 व भारतीय दण्ड संहिता की धारा-96 से 106 तक आत्मरक्षा के लिए अनिवार्य हो जाता है।

कम से कम बल प्रयोग के सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए लेकिन जहां तक सांप्रदायिक दंगों का, आगजनी, कत्ल तथा नरसंहार आदि का संबंध है, पर्याप्त बल प्रयोग अनिवार्य है। अतः पुलिस अधिकारियों को अपने स्वविवेक के आधार पर हालात की गंभीरता को देखते हुए बल प्रयोग करना उचित है। संयुक्त राष्ट्र की आचार संहिता में कानून लागू करने वाले अधिकारियों द्वारा शस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शस्त्र केवल उन्हीं हालात में प्रयोग किए जाए जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी में रुकावट डालने के लिए शस्त्रों का प्रयोग कर गिरफ्तार करने वालों या जनता के लिए खतरा पैदा करे। जॉन ऐल्डर्सन ने ठीक ही कहा है, "बिना हथियार वाला पुलिस अधिकारी कम से कम बल प्रयोग करने के सिद्धांत का प्रतीक है।" अतः बल प्रयोग के लिए निम्नलिखित बातें मार्गदर्शक के रूप में है :

1. कम से कम बल प्रयोग।
2. कानून के दायरे में रहते हुए न्यायसंगत का प्रयोग।
3. उचित बल प्रयोग जिसमें जानी व माली नुकसान बहुत कम हो।
4. हालात की गंभीरता को देखते हुए अंतिम बचाव के रूप में।
5. कुछ विरोधी हालात में तुरंत कार्रवाई करने के लिए बल प्रयोग अत्यंत अनिवार्य है।

मानवाधिकार व आतंक निरोधक कानून

शांति और सद्भाव मानवता के विकास तथा उन्नति

के लिए अनिवार्य है। शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रत्येक समाज में पुलिस प्रणाली है। लोकतंत्र के दो मुख्य स्तम्भ 'विधि का शासन' व 'विधि के समक्ष समानता' है। पुलिस का कार्य कानून की छत्र-छाया में चलना है। कानून लोगों की सामूहिक बुद्धिमता है जोकि विधायिका द्वारा जाहिर की जाती है तथा कानून का लक्ष्य शांतिपूर्ण स्थितियां बनाना है।

पुलिस तंत्र लड़खड़ा जाता है जब कभी उसे राजनैतिक हिंसा, अलगाववादी शक्तियों व उग्रवादियों से दो चार होना पड़ता है। पुलिस नागरिकों की जान व माल की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है जबकि उपरोक्त विघटनकारी शक्तियां उनके लिए खतरा पैदा करती हैं। लेकिन पुलिस को कानून के द्वारा ही इनसे निपटना पड़ता है।

1980 के दशक में जिस तरह से भारत में आतंकवाद आया तो टाडा अधिनियम लागू किया गया। 'टाडा' नजरबंदी निवारण अधिनियम न होकर एक विशेष कानून है जो विशेष प्रकार के अपराध से निपटने के लिए है। चूँकि जब भारतीय दंड संहिता बनी उस समय आतंकवाद नहीं था इसलिए इस प्रकार के कानून की आवश्यकता नहीं पड़ी।

'टाडा' कानून का प्रयोग पंजाब में आतंकवादियों के लिए और अन्य स्थानों जैसे बम्बई गैंगवार के लिए तथा बिहार में माफिया के लिए प्रयोग में लाया गया। यदि अयोध्या कांड व बम्बई विस्फोट कांड के बाद देश खूनी होली से बच गया तो उसका एक मात्र कारण टाडा कानून का प्रयोग ही रहा।

यह भी एक कटु सत्य है कि टाडा का प्रयोग पुलिस द्वारा नागरिकों के शोषण के लिए किया गया। इस भयानक कानून की आलोचना विभिन्न आधारों पर की गई है। इनमें मुख्य पहलू यह है कि टाडा का प्रयोग राज्य द्वारा गलत ढंग से किया गया तथा यह अपने उद्देश्य में असफल करार दिया गया। केवल 1 प्रतिशत लोगों को ही इस कानून के अंतर्गत सजाएं दी गईं। दूसरी आलोचना यह है कि यह न्यायसंगत नहीं है कि अपराधी को इस्तगासा के गवाहों का नाम भी पता न चले तथा पुलिस के सामने स्वीकारोक्ति अदालत में स्वीकार्य हो। तीसरी आलोचना यह है कि यह जमानत के अधिकार को काफी जटिलता प्रदान करता है तथा अपराधी को जमानत मिलना बड़ा कठिन है और अंतिम आलोचना यह है कि किसी अधिसूचित क्षेत्र में केवल हथियार का रखना मात्र ही अपराध बन जाता है। इसकी सजा 5 वर्ष का कारावास।

अतः आलोचनाओं के आधार पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष ने 20 फरवरी, 1995, को सभी सांसदों को इसके औचित्य पर प्रश्न उठाते हुए तथा इसकी समय सीमा भी समाप्त हो जाने पर इस कानून को समाप्त करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि देश की एकता व अखंडता बनाए रखने के लिए टाडा को जारी रखना मानवाधिकारों का उल्लंघन है। यह एक बहाना मात्र व दिखावा है तथा इसकी आड़ में नागरिकों का शोषण होता है। मासूम लोगों की जानें जाती हैं। अतः इन सभी बातों पर गौर करने के बाद अब इस कानून को समाप्त कर दिया गया है।

शिकायतों, अपराधों से पीड़ितों व संदिग्ध गिरफ्तार व्यक्तियों तथा विशेष रूप से महिलाओं व बच्चों के साथ बर्ताव करने हेतु विभागीय व न्यायालयों के दिशा निर्देश

शिकायतें प्राप्त करना, उनका वर्गीकरण तथा जनता द्वारा पुलिस वालों के विरुद्ध शिकायतों का निपटारा तथा अन्य संबंधित मामले जो इस विभाग के द्वारा संभाले जाते हैं, स्थायी आदेश संख्या 159 के अंतर्गत निपटाए जाते हैं। लंबी शिकायतों को कारगर ढंग से निपटाया जाए। स्थायी आदेश का उद्देश्य शिकायतों के निपटारे में होने वाली कमियों को दूर कर एक अच्छा तालमेल बनाना है अर्थात् जनता तथा पुलिस में सौहार्द उत्पन्न

कराना है। प्रायः शिकायतें निम्न प्रकार की होती हैं :

1. शिकायतें जिनकी छान-बीन सतर्कता शाखा करें।
2. शिकायतें जो जिला या इकाई से संबंधित हो।

स्थायी आदेश संख्या 167 के तहत ऐसा देखने में आया है कि असंज्ञेय आपराधिक मामलात में या दीवानी मामलों में लोग आपराधिक रंग लिखित शिकायतों में देते हैं। उनका उद्‌देश्य थानों में रिपोर्ट दर्ज कराकर विरोधी दल को परेशान करना होता है। इन मामलों में अच्छी तरह छान-बीन करके तथ्यों का पता लगाकर ही रिपोर्ट दर्ज करनी चाहिए। यदि मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है तो पीड़ित को तुरंत राहत पहुंचाकर सहायता करनी चाहिए।

प्रायः यह देखने में आया है कि कुछ विवेचना अधिकारी जब विवेचना के दौरान धारा 160 व 175 {आपराधिक प्रक्रिया संहिता} के अंतर्गत गवाहों या संदिग्ध व्यक्तियों को बुलाते हैं तो कानूनी प्रावधानों का ध्यान नहीं रखते हैं {स्थायी आदेश संख्या 109} धारा 160 व 174 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत विवेचना अधिकारी को फार्म 25.2 {1} में लिखित रूप से संबंधित व्यक्ति को सूचना दी जानी चाहिए। उस आदेश पर आने का समय तथा तिथि लिखनी चाहिए। प्रत्येक विवेचना अधिकारी व थाना प्रभारी का कर्तव्य है कि वह इन प्रावधानों पर ध्यान रखे।

इसी प्रकार से समय-समय पर न्यायपालिका द्वारा अपराध से पीड़ितों को सहायता पहुंचाने के लिए निर्देश दिए जाते हैं। अपराधी के प्रति थर्ड डिग्री के तरीके न अपनाने के निर्देश भी समय-समय पर आते रहते हैं। अतः प्रत्येक पुलिस अधिकारी को इन निर्देशों का सही रूप से पालन करना चाहिए। स्थायी आदेश संख्या 109 में धारा 106 व 175 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत गवाहों को विवेचना के दौरान बुलाने का विवरण दिया गया है। ❐

बालक-बालिका में लिंगीय भेद करना गैर कानूनी

डा. जयश्री एस भट्ट

रिसर्च एसोसिएट, समाज शास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, डा हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

[शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के साथ समाज एवं परिवार में लिंगीय भेदभावपूर्ण व्यवहार रखकर हम कानून को चुनौती एवं देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते रहे हैं, क्योंकि समाज में नारियों का भविष्य वर्तमान बालिका की स्थिति पर निर्भर है। फ्रांस के एक विद्वान ने सच ही लिखा है कि "किसी राष्ट्र की वास्तविक स्थिति का यदि मूल्यांकन करना हो तो उस राष्ट्र की बालिकाओं के जीवन स्तर का मूल्यांकन करना चाहिए।" बालिका के प्रति भेदभावपूर्ण विकृत सोच गतिहीन समाज की रूढ़िवादिता का द्योतक है इसलिए आज के परिवर्तनशील दौर के अनुरूप हम अपने आप को ढाल नहीं पा रहे हैं। जिसके बहुआयामी दुष्परिणाम देश को भोगने पड़ रहे हैं अतएव इस विकृत सोच के रोकने के लिए इस पर हुए शोध-कार्यो एवं राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों का विश्लेषण कर इनके कारणों को जानकर निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।]

प्रस्तावना

हमारे देश में आज भी 95 प्रतिशत परिस्थितियों में कन्या जन्म पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आंसू बहाए जाते हैं वहीं बालक के जन्म लेते ही परिवार में प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है लड्डू बांटे जाते हैं, नाच-गाने एवं ढोल या थाली बजाकर पड़ोसियों, रिश्तेदारों एवं समाज को सूचना दी जाती है नर्स एवं दाइयों को मुंह मांगा इनाम दिया जाता है वहीं बालिका के जन्म पर परिवार में उदासीनता छा जाती है रिश्तेदार एवं समाज वाले माता-पिता को सहानुभूति देते हैं एवं नर्स-दाइयों को इनाम मांगने का अधिकार नहीं होता। ऐसे वातावरण में जन्म देने वाली मां अपराधिन महसूस कर तनावग्रसित हो जाती है जिससे जन्म लेने वाली कन्या के लिए मां के स्तनों में दूध नहीं उतरता इस प्रकार कन्या जन्म के पश्चात् उसके चारों तरफ का वातावरण कुछ इस प्रकार का हो जाता है कि न चाहते हुए भी अनजाने में स्वमेव ही उत्पीड़न की शुरुआत हो जाती है। इसलिए लड़कियां जन्म लेने के बाद अपनी उम्र के तीन महीने भी नहीं देख पाती और हर पल इनकी संख्या घटती चली जाती है इनमें से जो जी लेती हैं उनमें आगे की प्रताड़नाएं सहन करने की अथाह सहनशक्ति आ जाती है। यदि पुरुषवर्ग महिलाओं की प्रताड़नाओं का सिर्फ 10 प्रतिशत ही सहन कर ले तो उसकी हृदय गति रुक जाए। कलयुग का नियम भी है कि जिसकी सत्ता या उपयोगिता उसकी भक्ति आज गाय बछड़ी को जन्म देती है तो उसका पालन-पोषण इंसान करता है वही बछड़े को मां से अलग कर जंगल में छोड़ दिया जाता है परंतु ईश्वर ने प्रत्येक बच्चों को उन्हीं पंचतत्वों से बनाकर उसी नारी के कोख से ही भेजा है फिर भी समाज ने उसी के विरुद्ध पर्दा प्रथा, बाल विवाह एवं दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाओं को जन्म देकर स्वयं ही ने उसके महत्व को कम किया है जबकि मस्तिष्क की शक्ति अथवा बुद्धि में स्त्रियां पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं यह हिसाब लगाया गया है कि विश्वविद्यालय परीक्षाओं में लड़कियों का पास प्रतिशत लड़कों की अपेक्षा अधिक होता है। नोबल पुरस्कार के सारे इतिहास में केवल एक ही व्यक्ति को दो बार यह पुरस्कार मिला और वह व्यक्ति थी एक महिला—'मेरी

क्यूरी, जिन्हें 1903 में यह पुरस्कार भौतिक शास्त्र के लिए तथा 1911 में रसायनशास्त्र के लिए मिला।'

दैनिक जीवन में कदम-कदम पर बालक एवं बालिकाओं के साथ खाने-पीने, शिक्षा-दीक्षा, खेलकूद, स्वास्थ्य देख-रेख, पारिवारिक कार्य के क्षेत्र में, रहन-सहन संबंधी स्वतंत्रता, अन्य प्रकार के पालन-पोषण के साथ-साथ जन्म मृत्यु के पंजीकरण में भी भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है और इसे समाज में बड़े सामान्य रूप में लिया जाता रहा है, जो गंभीर विषय बनता जा रहा है अतएव लिंगीय भेदभाव पर कुछ शोध-कार्य हुए हैं जो निम्नलिखित हैं :

बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव : अध्ययन एवं शोध-कार्य

1. प्रभाकर सिंह द्वारा तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारणों का पता लगाने के उद्देश्य से म.प्र. के तीन जिलों में अध्ययन करने से पाया कि सबसे प्रमुख कारण लड़के की चाहत है। अध्ययन के 73 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पहला बच्चा लड़का ही होना चाहिए। वंश चलाने एवं पितृ ऋण से मुक्ति हेतु माता-पिता पुत्र जन्म को आवश्यक मानते हैं। इसके मुकाबले केवल 9 प्रतिशत लोग ही पहले बच्चे के रूप में लड़की चाहते हैं जबकि 18 प्रतिशत उत्तरदाता लड़का-लड़की में भेद नहीं करते हैं। अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि पहली संतान लड़का हुई तो पुनः गर्भधारण में विलम्ब होता है किंतु पहली संतान लड़की हुई तो पुत्र की प्रत्याशा में पुनः गर्भधारण कर लिया जाता है। इस तरह पुत्र प्राप्ति के मोह में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जाती है।[3] काठमांडू नेपाल के एक 96 वर्ष के वृद्ध व्यक्ति ने पुत्र प्राप्ति की उम्मीद से आठवीं बार शादी रचाई।[4]
2. गैलस पोल के अनुसार अमेरिका में कराए गए सर्वे में करीब 83 प्रतिशत लोगों का कहना था कि अगर परिवार एक ही बच्चे तक सीमित रखना हो तो वह बच्चा बेटा हो तो बेहतर है, वहीं 28 प्रतिशत ने कहा कि लड़की एवं 18 प्रतिशत ने कोई भी चलेगा कहा। भारत एवं अमेरिका में अंतर सिर्फ इतना है कि बेटे की चाहत के बाद अगर बेटी हो जाए तो उसका भी स्वागत किया जाता है।[5]
3. संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में देश के दो संपन्न प्रांत पंजाब और हरियाणा में बेटे की चाह में असम और पश्चिम बंगाल में गरीब युवतियां गैर कानूनी रूप से लाई जाती हैं एवं पुत्र पैदा होने के बाद इन लाचार औरतों को इनके हाल पर छोड़ दिया जाता है (दैनिक भास्कर) ये रिपोर्ट बालक-बालिका के पैदा होने के पहले ही भेदभाव को प्रदर्शित करता है।
4. मनोज प्रियदर्शी ने अपने अध्ययन में बताया कि अनाथालय मातृछाया में अब तक आए 100 बच्चों में से लगभग 65 लड़कियां हैं। निःसंतान माता-पिता गोद लेने में प्राथमिकता लड़का होती है। एस.ओ.एस. बालग्राम में पल रहे 216 बच्चों में 118 लड़कियां हैं। बालग्राम के काउंसलकर पठान रियाज खान बताते हैं कि उनके यहां पिछले चार सालों में आए कुल 55 बच्चों में से 31 लड़कियां हैं।[6]
5. जीतेन्द्र सिंह भाटी ने अपने अध्ययन में पाया कि देश में हर रोज पैदा होने वाले 72 से 74 हजार बच्चों के जन्म पंजीकरण की बारी आने पर कुछ घंटों के भीतर नवजात शिशुओं के साथ भेदभाव की दीवार खड़ी हो जाती है। क्योंकि लड़कों के जन्म का पंजीकरण कराने को लेकर ज्यादा जागरूकता दिखती है जबकि चार कन्या

शिशुओं में से महज एक का ही जन्म पंजीकृत हो पाता है। इसी प्रकार देश में महज 30 प्रतिशत औरतों की मौत को ही पंजीकृत कराया जाता है वो भी शायद संपत्ति से जुड़े मामलों को निपटाने के लिए बिहार में महज 18 फीसदी जन्म और मृत्यु के मामले पंजीकृत होते हैं। अर्थात कन्या जन्म एवं मृत्यु के बाद भी उसके प्रति उपेक्षा ही नजर आती है। जबकि संयुक्त राष्ट्र द्वारा तैयार बाल अधिकारों में सहमति पत्र की धारा सात में जन्म पंजीकरण को यह कहते हुए जरूरी बताया गया कि यह बाल अधिकारी की श्रेणी में आता है।[7]

6. भास्कर की टीम ने पंजाब में अनचाही संतान जिसमें बेटी 75 हजार में एवं बेटा 4 लाख में बेचा और खरीदा जा रहा है इस मामले का खुलासा किया जो बालक एवं बालिका की कीमत से उसकी हैसियत महत्व को बताकर भेदभाव प्रदर्शित करता है।[8]

7. अनुपमा शर्मा (1990) ने 100 ग्रामीण तथा 50 शहरी कुल 150 छात्र-छात्राएं तथा 40 अध्यापक-अध्यापिकाओं से साक्षात्कार एवं परिवार का अवलोकन कर पाया कि अधिकांश ग्रामीण छात्राएं पारिवारिक कार्यों में माता-पिता का भेदभावपूर्ण व्यवहार अस्वीकार करती हैं। इसके दूसरी तरफ 27 प्रतिशत शहरी छात्राएं बताती हैं कि उनके माता-पिता भाईयों को न कहकर उन्हें ही पढ़ाई के समय भी पारिवारिक कार्य बताते रहते हैं। 12 प्रतिशत ग्रामीण छात्राएं अपने परिवारों में लड़कों को अधिक पौष्टिक तथा संतुलित भोजन दिया जाना स्वीकार करती हैं। 18 प्रतिशत शहरी छात्राओं तथा 14 प्रतिशत ग्रामीण छात्र-छात्राओं के माता-पिता संकीर्ण एवं रूढ़िवादी विचारधारा के कारण अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाने में हिचकिचाते हैं। वहीं 27 प्रतिशत शहरी तथा 40 प्रतिशत ग्रामीण छात्राएं मानतीं हैं कि उन्हें लड़कों के समान स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती है, 56 प्रतिशत छात्राओं की राय के अनुसार उन्हें भाइयों के समान कहीं भी जाने सहज अनुमति नहीं दी जाती है। इन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि समाज भेदभावपूर्ण व्यवहार से परिचित नहीं है, पर वह सामाजिक मान्यताओं में जकड़ा होने के कारण स्पष्ट नहीं कर पा रहा है पहले तो उसे मानसिक रूप से तैयार होना होगा।[9]

8. महिला एवं बाल विकास विभाग के सबसे बड़े राष्ट्रीय सर्वेक्षण (11 अप्रैल 2007) में पाया गया कि छियालीस फीसदी लड़कियां घरों में छोटे भाईयों-बहिनों को संभालने में बचपन गुजार देती हैं इसका आंकड़ा केरल जैसे सर्वाधिक शिक्षित राज्य में बेहद ऊंचा 81 प्रतिशत है। इसी तरह 48 फीसदी लड़कियां मानतीं हैं कि उनके माता-पिता उनसे ज्यादा तरजीह बेटे को देते हैं, अड़तालीस फीसदी से ज्यादा कन्याएं लड़की होना ही नहीं चाहती, राजस्थान में तो यह प्रतिशत 87 तक पहुंच गया वहीं उत्तरप्रदेश में 85, मध्यप्रदेश में 79 और दिल्ली में 76 फीसदी है।[10]

9. न्यूट्रीशियन फाउडेशन ऑफ इंडिया ने देश के विभिन्न हिस्सों में भोजन संबंधी सर्वेक्षणों में यह तथ्य उजागर हुआ है कि भारत में 90 प्रतिशत किशोरियां, महिलाएं और बच्चे रक्त अल्पता के शिकार हैं।[11] स्वास्थ्य सुविधाओं के ही अभाव में अकाल मौत हो रही हैं। जिसमें बीते 10 वर्षों में बालक-बालिका शिशु मृत्युदर में 100 और 145 का अनुपात था।

10. जया नर्गिस के अनुसार खानपान और जीवन के अन्य आवश्यक घटकों में महिला के न्यूनतम

हिस्सेदारी बना देने के कारण उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आर्थिक विकास भी न्यूनतम होते हैं। इस प्रकार महिला पुरुषों के मुकाबले आधे से भी कम प्रतिशत जीवन जी पाती हैं। हमारी जड़ता और पिछड़ेपन के कारण प्रतिवर्ष देश में 15 वर्ष की उम्र के पहले 30 लाख लड़कियां दम तोड़ देती हैं।[12]

11. एक अखबार के अनुसार 1975 में किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 77.5 प्रतिशत लोग लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा से अधिक पढ़ाने-लिखाने के हक में नहीं थे। उन्हें केवल घरेलू हिसाब-किताब के लिए थोड़ी बहुत गिनती तथा चिट्ठी पढ़ने लायक भाषा सिखाने की कोशिश की जाती थी। आगे अपनी पढ़ाई की इच्छा प्रकट करने पर लड़कियों को जवाब मिलता है कि आगे पढ़ने पर ऊंच-नीच हो गई तो मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।[13]

12. डा. विनोद गुप्ता (1998) के अनुसार एक समिति के माध्यम से महिलाओं की शिक्षा के संबंध में एक व्यापक सर्वेक्षण किया गया था जिसके अनुसार 17 प्रतिशत माता-पिता अपनी लड़कियों को शिक्षा दिए जाने के पक्ष में थे। अधिकांश अभिभावकों का मत था कि घर चलाने के लिए ज्यादा पढ़ाने की जरूरत ही क्या है। प्रेम कपाडिया के अनुसार उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 73 प्रतिशत छात्राओं का कहना है कि उनके माता-पिता उनकी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे स्वयं शिक्षा के प्रति उदासीन हो जाते हैं और उनमें हीनता की भावना का विकास होता है। 38 प्रतिशत छात्राओं का कहना है कि उन्हें समय से पुस्तक-कापियां आदि नहीं मिल पाती हैं। कभी-कभी तो घर में भोजन तथा वस्त्र की भी समस्या रहती है। छात्राओं ने यह भी बताया कि कभी-कभी विद्यालय द्वारा स्वीकृत पोशाक के अभाव में उन्हें विद्यालय से अनुपस्थित होना पड़ता है।[14] प्रेम कपाड़िया के ही अनुसार 1987 में भारत में 6 से 11 वर्ष आयु समूह में से 45 प्रतिशत के ऊपर, 12 से 14 आयु समूह में से 75 प्रतिशत से ऊपर और 15 से 17 वर्ष आयु समूह में से 85 प्रतिशत से ऊपर लड़कियां स्कूल नहीं जाती हैं। 17 से 23 की आयु समूह में से विश्वविद्यालय में शिक्षित लड़कियों का हिस्सा करीब तीन प्रतिशत है।[15]

13. एसोसिएन आफ इंडिया यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के हिसाब से आज देश में लगभग 35 प्रतिशत महिलाएं जो कि 15 वर्ष से अधिक की है वहीं शिक्षा प्राप्त कर सकी हैं। जबकि विदेशों में यह आंकड़ा 85 और 90 प्रतिशत है।[16] शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 100 लड़कियों में से 18.04 प्रतिशत लड़कियां ही कक्षा 8 में पहुंच पाईं।

14. नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे (1992-93) के आंकड़ें दर्शाते हैं कि 6—14 वर्ष की उम्र की वे लड़कियां जो स्कूल में शिक्षा हासिल नहीं कर रही हैं। वो तालिका क्रमांक-1 में दिखाया गया है—

तालिका क्रमांक —1

6 से 14 वर्ष की उम्र की वे लड़कियां जो स्कूलों में शिक्षा हासिल नहीं कर रही हैं

क्र.	राज्य	प्रतिशत	क्र.	राज्य	प्रतिशत
1	केरल	5	7	गुजरात	32
2	हिमाचल	12	8	आसाम	34
3	पंजाब	22	9	कर्नाटक	36
4	तमिलनाडू	22	10	पश्चिम बंगाल	37
5	महाराष्ट्र	23	11	उड़ीसा	38

6	हरियाणा	25	12	आंध्रप्रदेश	45
13	मध्यप्रदेश	45	15	राजस्थान	59
14	उत्तरप्रदेश	52	16	बिहार	62

स्त्रोत्र : नेशनल फमिली हेल्थ सर्वे 1992-93

15. डा. चंद्रपाल के अनुसार स्वतंत्रता के प्राप्ति के समय (1951) महिलाओं में साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी जो सन् 2001 में बढ़कर 54.16 प्रतिशत हो गई है। तो क्या वास्तव में वृद्धि हुई है जबकि गांव की पहली कक्षा में पढ़ने वाली 100 बालिकाएं पांचवीं कक्षा में पहुंचते-पहुंचते मात्र 40 रह जाती है, आठवीं कक्षा तक 18, दसवीं कक्षा तक 8 और हायर सेकेण्डरी में जाते-जाते इनकी संख्या 1 या 2 रह जाती है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में उच्च शिक्षा का प्रतिशत, 1 या 2 प्रतिशत रह जाता है।[17]

16. डा. शिवकुमार 'मधुर' ने सन् 2001 की ताजी रिपोर्ट के अनुसार भारत में महिला साक्षरता का प्रतिशत 54.18 और मध्यप्रदेश में 50.28 तक पहुंच गया है। जबकि सन् 1991 में मध्यप्रदेश की महिला साक्षरता 29.35 प्रतिशत थी अर्थात पिछले दशक में राज्य की महिला साक्षरता करीब 21 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई इसकी वजह सन् 2001 की जनगणना रिपोर्ट में दर्ज है कि 7 वर्ष और उससे अधिक आयु का व्यक्ति जो किसी भाषा को समझ सकता हो, उसे लिख सकता हो और पढ़ सकता हो साक्षर कहलाता है। इसी नए मानदंड के अनुसार आज देश में और मध्यप्रदेश में साक्षरता की दर इतनी बढ़ी-चढ़ी दिखाई देती है।[18] कुलदीप गंगवार ने इस बात का खुलासा करते हुए सन् 2001 की जनगणना के अनुसार बताया कि संपूर्ण देश में 81 ऐसे जनपद हैं जहां साक्षरता केवल 50 प्रतिशत ही है बल्कि उससे भी कम है और 30 ऐसे जनपद हैं जिनमें महिला साक्षरता दर 30 प्रतिशत से भी कम है ऐसे जनपद बिहार में 15, उत्तर प्रदेश में 8, झारखंड में 5, उड़ीसा में 7 और जम्मू कश्मीर में 3 हैं तथा 6 ऐसे राज्य हैं जहां पर कुल महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत से भी कम है।[19] इस प्रकार उपरोक्त अध्ययनों एवं शोधकार्यों से स्पष्ट है कि बालकों एवं बालिकाओं के प्रति उसके पालन एवं शिक्षा-दीक्षा में आज भी भेदभाव की विकृत मानसिकता बरकरार है एवं इसे दूर करने के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रयास किए जा रहे हैं वो नीचे दिए गए हैं :

बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव : राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास

- महिलाओं के प्रति हर प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन से सम्बद्ध 1979 ई. के समझौते (सीईडी डब्ल्यू) और 1989 ई. के बाल अधिकार समझौते में ऐसे स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं जिनके अंतर्गत सरकारें लैंगिक भेदभाव समाप्त करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य हैं। अब तक 180 देश सीईडीडब्ल्यू का अनुमोदन कर चुके हैं।[20] भारत सरकार द्वारा अपने बालकों के अधिकार संबंधी आयोजित अधिवेशन में धारा 2 के तहत बालक-बालिक के बीच लिंगीय भेद को निषिद्ध किया गया जिसके अंतर्गत बालक-बालिकाओं के बीच लिंग, जाति, वर्ण, भाषा, धर्म, माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति के आधार पर भेदभाव को दूर करने का संकल्प किया गया है भारत सरकार ने सभी राज्यों को निर्देश दिए हैं कि वे सभी बालक-बालिकाओं को विकास के समुचित अवसर प्रदान करेंगे।[21]
- वर्ष 1990 को सार्क के सदस्य देशों में 1991-2000 के दशक को सामूहिक रूप से बालिका दशक

घोषित कर बालिका विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए गए।[22] मई 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति अपनाई गई। जिसमें संशोधन कर राष्ट्रीय मिशन की स्थापना की गई। 16 दिसम्बर 1993 को नई दिल्ली में 'सबके लिए शिक्षा' पर शिखर सम्मेलन में भारत समेत घनी आबादी वाले 9 विकासशील देशों द्वारा पारित दिल्ली घोषणा में भी स्वीकार किया गया है कि लड़कियों तथा महिलाओं को शिक्षित करना और सक्षम बनाना अपने आप में महत्वपूर्ण है।[23]

- पंचवर्षीय योजनाओं में बालिका शिक्षा के लिए सुविधाएं बढ़ाने हेतु 'नेशनल रूरल एंपलाइयमेंट प्रोग्राम' (एन.आर.ई.पी.) तथा 'रूरल लैंडलैस एंपलाइयमेंट गारंटी प्रोग्राम' (आर.एल.ई.जी.पी.) के कोषों की अनुमोदनार्थ स्थापना द्वारा एक सफल प्रयत्न किया गया।[24]
- भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1999-2000 के अनुसार माध्यमिक और उच्च शिक्षा विभाग ने साथ मिलकर महिला समाख्या (एम.एस.) कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अधिदेशाधीन महिला शिक्षा के समर्थन में सकारात्मक कार्रवाई की प्रतिबद्धता को पूरा करने एवं निर्धन ग्रामीण महिलाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दस्तावेज तैयार और क्रियान्वित करता है। रिपोर्ट के अनुसार 'महिला समाख्या' कार्यक्रम को उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, असम और केरल के 51 जिलों तथा 7335 से भी अधिक गांवों में फैलाया गया है।[25]
- 'दूरस्थ शिक्षा' अर्थात जो बालिकाएं किसी कारण से अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सकी हैं और जो शिक्षा को जीवन पर्यन्त जारी रखना चाहती हैं, वे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से अपने समय तथा गति के अनुसार शिक्षा ले सकेंगी। इसके माध्यम से लड़कियों की सामाजिक एवं वित्तीय परिस्थितियां कैसी भी हों, वह सरलता से घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त कर सकती हैं।[26]
- सन् 2000 में 189 देशों के नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी शिखर बैठक के घोषणा पत्र के आठ सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य (मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स) शामिल किए गए। इन लक्ष्यों को केंद्र में रखते हुए सन् 2002 में 250 से अधिक सुविख्यात विशेषज्ञों ने यह निष्कर्ष माना कि लैंगिक समानता न केवल मानवाधिकार का एक महत्वपूर्ण आयाम है बल्कि एम.डी.जी. के आठ लक्ष्यों में से एक है एवं यह सात लक्ष्यों को पूरा करने में भी सहायक है। इन सहस्त्राब्दी विकास को पूरा करने की समय-सीमा 2015 ई. है।[27]
- बालिकाओं की शिक्षा स्वास्थ्य और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए मध्यप्रदेश में जनवरी 2006 में लाड़ली लक्ष्मी योजना के अंतर्गत जन्म लेने वाली हर बालिका के नाम सरकार पहले पांच वर्ष जमा करेगी राशि फिर पांचवी, आठवीं और आगे की पढ़ाई में यह राशि नगद दी जाएगी। 21 वर्ष पूर्ण होने पर 1 लाख रुपये दिए जाएंगे। योजना का लाभ लेने के लिए आँगनबाड़ियों में नाम दर्ज कराए जा रहे हैं एवं इसका लाभ जनवरी 2006 के बाद दो या दो से कम संतान वाले माता-पिता के घर जन्म लेने वाली बालिकाओं को ही मिलेगा इसके साथ ही महिला सशक्तिकरण की अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं में गाँव की बेटी योजना का विस्तार अब हर प्रथम श्रेणी पाने वाली छात्रा को उच्च शिक्षा में मदद, कक्षा दसवीं के अलावा छठवीं की अ.जा., अ.ज.जा. की छात्राओं को निःशुल्क साईकिल वितरण, दुर्गावती बटालियन पुलिस में दस प्रतिशत आरक्षण, शिक्षकों और अन्य सरकारी नौकरियों में आरक्षण, थानों में महिला डेस्क और महिला हेल्पलाइन, जमीन जायदाद

में बराबरी का हक पंजीयन स्त्री के नाम कराने पर स्टाम्प शुल्क में भारी कमी एवं स्कूली गणवेश के अभाव में पढ़ाई न रुक सके इसके लिए 51.36 लाख बालिकाओं को निःशुल्क गणवेश दिया जा रहा है। इसके साथ-साथ कई कल्याणकारी योजनाएं भी शामिल हैं।[29] इसके बाद भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भेदभाव की मानसिकता बरकरार है आखिर क्यों? शहरी क्षेत्रों में हम कह सकते हैं कि भेदभाव विकृत मानसिकता में कुछ अंतर दिख रहा है पर वो न के बराबर है। बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव के प्रमुख कारण निम्नलिखित हो सकते हैं-

बालक-बालिका के प्रति भेदभाव : कारण

प्राचीन काल की व्यवस्था

पूर्व वैदिक काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुत्र का स्थान सर्वोपरि था। ब्राह्मण काल में कन्याओं का महत्व और भी कम हो गया चूंकि शतपथ ब्राह्मण में पितृऋण से मुक्ति के लिए पुत्र प्राप्ति आवश्यक माना गया इस प्रकार अंतिम संस्कार से लेकर श्राद्ध या पिंड दान के संबंध में लड़कों को प्राप्त विशेषाधिकार ने लड़कों एवं लड़कियों में भेदभाव की भावनाएं उत्पन्न कर दी। मध्ययुग में यह गलत विचार लोगों के मन में घर कर गया था कि ज्ञान जैसी पवित्र चीज पर सिर्फ उच्च कुलीन लोगों का ही अधिकार है और फिर सामंती युग के दौरान यह गलत प्रथा चलती रही और यहां तक कहा गया कि यदि किसी नारी या शूद्र के कान में वेद का कोई मंत्र या वाक्य पड़ जाए तो उसके कान में पिघला हुआ सीसा डाल दिया जाए। भारत में मुसलमानों का हिंदुओं के संपर्क का बालिकाओं एवं महिला वर्ग पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिससे स्त्री को अधिकतर विलासिता की वस्तु समझा जाने लगा जिसके कारण समाज में पर्दाप्रथा, बाल-विवाह, जातिप्रथा, अशिक्षा आदि कुप्रथा देशभर में फैल गई। जिसका प्रभाव गांवों में जहां भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या रहती है वहां ये कुप्रथाएं आज भी अपने मूर्त रूप में बरकरार हैं।

कन्यादान की प्रथा

कन्यादान कर स्वयं की कन्या को एक झटके में पराया कर भूमि, भवन तथा चल-अचल संपत्ति से भी बेदखल कर दिया जाता है। लड़की तो पराए घर की अमानत है सोचकर उसके खान-पान एवं शिक्षा-दीक्षा में कमी कर उससे गृहणी के कामों में हाथ बंटाने को कहा जाता है बेटा बड़ा होकर सहारा देगा ये सोच ही भेदभाव का कारण बनता है।

शारीरिक रचना

प्रकृति ने बालिकाओं की शारीरिक रचना ही ऐसी की है कि जिन्हें सदैव सहारे की जरूरत रहती है अतएव अधिकांश अभिभावक उनकी सुरक्षा को लेकर चिंतित रहते हैं रास्ते में छेड़खानी एवं बलात्कार के डर से लड़कियों पर कई पाबंदियां लगा दी जाती हैं जो उनके साथ होने वाल भेदभाव का प्रमुख कारण है।

घरेलू काम का बोझ

भारतीय परिवेश में अधिकांशतः ग्रामीण इलाकों एवं निम्नवर्ग में कन्याओं को सुगृहिणी की भूमिका के लिए तैयार करते हुए बेटियों की शक्ति को चूल्हे-चौके से जोड़ देते हैं इसलिए भारत में लड़कों की तुलना में 40 लाख से अधिक लड़कियां बचपन में ही पढ़ने-लिखने के बजाए घर के काम-काज या खेत-खलिहानों में मजदूरी करने पर मजबूर हैं।[30] इसके बावजूद भी इनके कामों को नजरअंदाज कर दिया जाता है। क्योंकि उससे कोई आमदनी नहीं होती एक आकलन के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियां वयस्क होने तक तकरीबन 40 हजार रुपयों का काम कर चुकी होती हैं। 31 ये काम होते हैं ईंधन इकट्ठा करना, खेतों में बीज बोना, खेतों से खरपतवार निकालना और फसल कटाई के कामों के साथ-साथ छोटे भाई-बहिनों की देखभाल, घर की सफाई एवं अंधेरे में उठना, पानी और राशन की लाइन में खड़े रहना।

वर्तमान समय में राज्य के कुछ जिलों में पेयजल के लिए घर की बेटियों को 2-3 कि.मी. तक पैदल जाने को विवश होना पड़ता है अतएव इन्हीं सब कामों का बोझ पढ़ाई छोड़कर घर में रहने को विवश करता है।

बाल विवाह

भारत में बाल-विवाह के कानून भी इन रूढ़ियों के आगे हार गए राजस्थान के अखातीज के अवसर पर दूध पीते बच्चों के विवाह जगप्रसिद्ध हैं। भारत में 6.23 प्रतिशत लड़कियों की शादी 14 साल की उम्र में कर दी जाती है। जबकि 45 प्रतिशत लड़कियों की शादी 15-19 साल के बीच में हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात 70 प्रतिशत है। राकेश तनेजा के अनुसार गुड़गांव स्कूल की एक क्लास जिसमें चार से दस साल तक के 20 बच्चे हैं जिनमें से 16 शादीशुदा हैं।[32] जब हमारे देश की सामाजिक कुरीतियों के आगे कानून भी घुटने टेक देता है तो बालक एवं बालिकाओं के प्रति होने वाले भेदभाव को कैसे रोका जा सकता है।

दहेज प्रथा

लड़के की पढ़ाई की वसूली दहेज द्वारा हो सकती है पर लड़की सुशील एवं शिक्षित है तो भी बिना दहेज दिए विवाह संभव नहीं होता आज समाज में इसी कुप्रथा के कारण कन्या को गर्भ में मरवा दिया जाता है। इस प्रकार जैसे-जैसे दहेज प्रथा बढ़ रही है वैसे-वैसे बालिकाओं के प्रति भेदभाव एवं कन्या भ्रूण हत्याओं के प्रतिशत बढ़ रहे हैं।

निर्धनता एवं बालिका श्रम

निर्धनता के कारण माता-पिता छोटी-छोटी बच्चियों से भी घर की आमदनी में हाथ बंटाने की उम्मीद की जाती है शहरों की झुग्गी झोपड़ियों के निम्नवर्ग, ग्रामीण एवं आदिवासी इलाकों की कन्याएं भोर होते ही घर-घर, झाडू-बुहराने, पोंछा लगाने, बर्तन मांजने, कपड़े धोने, छोटे बच्चों की देखभाल करने एवं अन्य घरेलू कामकाज में चंद रुपयों की खातिर बालिका श्रमिक बना दी जाती है। अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययन बताते हैं कि लगभग 95 प्रतिशत बालिकाओं को 9 वर्ष या इससे भी कम आयु में श्रम/साध्य कार्यों में लगा दिया जाता है ऐसा इसलिए क्योंकि 96 प्रतिशत बालिकाएं अपनी पूरी कमाई घर वालों को खुशी-खुशी सौंप देती हैं, लेकिन यह ईमानदारी बालिकाओं पर दुर्भाग्य ही लाती है उनके लिए शिक्षा के दरवाजे सदा-सदा के लिए बंद हो जाते हैं। उनका विकास रूक जाता है, जिसका खामियाजा उन्हें जीवन भर भुगतना पड़ता है।[33]

अशिक्षित अभिभावक

अशिक्षित माता-पिता रूढ़िवाद एवं अज्ञानतावश परिवार नियोजन एवं स्वास्थ्य कार्यक्रमों को नहीं अपनाते और एक के बाद एक बच्चों की लाइन लगा देते हैं, इसका परिणाम बेटियों को ही भुगतना पड़ता है अपने भाई-बहिनों को संभालना साथ में मां के प्रसव के समय घर का काम भी बेटियों को ही करना पड़ता है इस तरह बचपन से ही जिम्मेदारियों का अहसास कराया जाता है जिससे वे स्वयं आखिरी में बचा भोजन करती हैं या भूखी सो जाती हैं। इस तरह धीरे-धीरे बेटियां विषम परिस्थिति में जीवन जीने की अभ्यस्त हो जाती हैं इसी तरह अशिक्षित अभिभावक अपने प्रति होने वाले भेदभाव को नियती मानकर सामान्य रूप में लेते हैं और आगे वाली पीढ़ी के साथ भी वही करती हैं इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी भेदभाव की भावना पनपती रहती है।

निर्भरता

कन्या बचपन में पिता, विवाह पश्चात् पति एवं बुढ़ापे में बेटों पर निर्भर रहती है। यही निर्भरता उसके प्रति होने वाले भेदभाव का कारण बन जाती है।

कन्या जन्म पर उत्पीड़न का भय

कन्या जन्म होने पर महिला को ससुराल में उत्पीड़न का भय सताता है उदाहरणस्वरूप पंजाब जिले के गांव फत्ता बालू में दो सगे भाइयों ने अपनी-पत्नियों की सिर्फ इसलिए हत्या कर दी क्योंकि वे बेटों को जन्म नहीं दे

पाई थीं।[34] इसी तरह उत्पीड़न के डर से एक महिला आशा जैन ने भी दूसरी बच्ची होने पर उसे बंबई रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म नं. 2 पर छोड़ आई कारण जानने के बाद पता चला कि ससुराल वाले दूसरी बच्ची पैदा होने पर निराश हो जाते।[35]

स्वार्थपूर्ण एवं विकृत मानसिकता

पुत्र घर का दीपक है माता-पिता के लिए वृद्धावस्था में सहारा बनेगा, वंश चलाएगा, नाम कमाएगा, सेवा करेगा, मरने के बाद पिंड दान देकर मोक्ष दिलवाएगा, लड़के से शादी करने के लिए लड़की वाले अभिभावक के चक्कर लगाएंगे एवं लड़का दहेज लाएगा इस तरह के स्वार्थपूर्ण एवं विकृत मानसिकता की सोच बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव करवाता है इसी विकृत सोच के कारण पंजाब व हरियाणा में अवांछित लड़कियों को काफी, अनचाही, भरपाई जैसे अटपटे नाम दिए जाते हैं कारण जानने पर पता लगा कि लड़की को इस कुदरत की ओर से सजा भी मानते हैं इसलिए उसका नाम भरपाई रख दिया यानी अपराध की भरपाई।[36]

बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव : निष्कर्ष

बालक एवं बालिकाओं के प्रति भेदभाव से संबंधित अध्ययनों एवं शोधकार्यों का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि केरल जैसे सर्वाधिक शिक्षित राज्यों में कन्याएं स्वयं को कन्या होना अभिशाप समझती हैं। इसलिए अड़तालीस फीसदी कन्याओं ने कहा कि वे लड़की होना नहीं चाहती, ये उनके प्रति हो रहे भेदभाव की पराकाष्ठा बताते हुए यह भी स्पष्ट करता है कि साक्षरता कन्या के प्रति हो रहे भेदभाव में कोई भूमिका नहीं निभा पा रहा है। इसी प्रकार शोध-कार्य द्वारा पाया गया कि भारत ही नहीं अप्रितु अमेरिका में भी अधिकतम प्रतिशत पहली संतान लड़का ही चाहते हैं यही लड़के की चाहत जनसंख्या बढ़ने में प्रमुख कारण माना गया, अनाथाश्रम में बढ़ती लड़कियों की संख्या कन्या के जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण में भेदभाव, पंजाब में अनचाही बेटी 75 हजार एवं बेटा 4 लाख की खरीद फरोख्त बालिका शिशु मृत्यु दर का अनुपात 6 से 14 वर्ष की उम्र की वे लड़कियां जो स्कूली शिक्षा हासिल नहीं कर रही हैं उसका सबसे ज्यादा प्रतिशत, बिहार और राजस्थान जहां बाल विवाह प्रथा आज भी पनप रहा है, पाए जाने के साथ-साथ बालक-बालिका की शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण एवं रहन-सहन में भेदभाव यह स्पष्ट करता है कि कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों एवं उपायों के बाद भी वर्तमान में बालक-बालिका के प्रति भेदभाव की मानसिकता बरकरार है।

बालक एवं बालिका के प्रति भेदभाव के कारणों का विश्लेषण करे तो हम पाते हैं कि पूर्व वैदिक काल से ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुत्र का स्थान सर्वोपरि था एवं ब्राह्मण काल में लड़कों को विशेषाधिकार प्राप्त हुए जिन्होंने बालक एवं बालिका में भेदभाव की भावनाओं को पनपने में और बढ़ावा दिया जिसमें बालिकाओं का उपनयन संस्कार भी बंद हो गया। बालिकाओं का नाममात्र का आत्मसम्मान जो बचा था वो मुसलमानों के आक्रमण ने पूरा कर उसे वस्तु मात्र तक सीमित कर दिया इस प्रकार बालिकाओं के विरुद्ध कन्यादान प्रथा तो पहले से ही विद्यमान थी अब सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, बाल—विवाह, जातिप्रथा, बेमेल विवाह एवं दहेज प्रथा की शुरूआत भी हो गई। जिसकी जड़े इतनी गहरी फैल गई कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जहां 80 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है वहां आज भी अपने मूर्तरूप में बरकरार है। कानूनन भी इन सामाजिक मान्यताओं कि जड़ों को हिला नहीं पा रहा, इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक प्रशासनिक कठिनाईयों के अलावा शिक्षा की व्यवस्था और व्यापकता के अभाव के कारण बालिकाएं गहरे भेदभाव और पक्षपात की शिकार हो रही हैं आश्चर्य तो यह है कि यह भेदभाव हर वर्ग में व्याप्त है। महिला संरक्षण के लिए नए कानूनी अधिकार, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों, कुछ शहरी

बालिकाओं एवं प्रसिद्ध महिलाओं को जो उच्च पदों पर आसित हैं जिन्हें हम उंगलियों में गिन सकते हैं ऐसे में हम यह कह दें कि बालिकाओं एवं महिलाओं की बहुत प्रगति हो रही है तो यह वैसा ही आंशिका सत्य होगा जैसा कि अक्सर लोग चंद महिलाओं लोपामुद्रा, अपाला, शची आदि ऋषिकाओं एवं लक्ष्मीबाई, जीजाबाई आदि रानियों का उदाहरण देकर यह कहते हैं कि प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत उच्च थी। सच्चाई कुछ और ही है सरकार द्वारा विद्यालयों का तेजी से पनपना एवं बच्चों को स्कालरशिप निःशुल्क शिक्षा एवं भोजन व्यवस्था के लालच में आकर भले ही अभिभावक स्कूलों में दाखिल दिलवा देते हैं परंतु वे रोज स्कूल न ही भेज पाते हैं न वे कुछ ज्ञान प्राप्त कर पाती हैं शिक्षक स्कूल बंद न हो जाए एवं रिजल्ट भी अच्छा दिखे उन्हें बिना अक्षर ज्ञान के प्रायमरी पास करवा सरकारी आंकड़ों में जोड़ देते हैं। क्योंकि ग्राम शिक्षा समिति केवल कागजों तक ही सीमित है। जिला पंचायत अधिकारियों और जिला शिक्षा अधिकारियों द्वारा निरीक्षण का अभाव के साथ-साथ ज्ञान लेने और देने वाले को ज्ञान के प्रति चाह न हो अपने एवं देश के प्रति ईमानदार न हो तो सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास सब व्यर्थ जाता है।

आज जब हम समझ गए हैं कि बालिका के प्रति भेदभाव का मूल कारण परंपराएं हैं तो क्यों न हम आशाराम बापू एवं रामदेव जैसी हस्तियों से नई परंपराओं का निर्माण करें जो समानता पर आधारित हों जो अभिभावकों को बालिकाओं के प्रति उनके अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति बोध कराए मीडिया द्वारा उन्हें उदाहरण देकर बताया जाए कि रोज की दिनचर्या में वे किस तरह का भेदभाव करते हैं, जिसे वे सामान्य व्यवहार भी मानते हैं। हर स्तर पर एवं वर्गो की मानसिकता को ध्यान में रखकर संस्कार जैसे टी.वी चैनल में विद्वानों से प्रवचन कराए जाएं जिसमें वे नई परंपरा का निर्माण एवं ये बात हर व्यक्ति के दिलो-दिमाग में बसादे कि "परिवार में बिना भेदभाव के पालन-पोषण करने पर माता-पिता को मोक्ष प्राप्त होता है।" सच ही कहा है। किसी ने :

"नारी को लघु कहा, नारी नर की खान—नारी से नर उपजे, ध्रुव, प्रहलाद समान।"

संदर्भ

1. बख्शी गोवर्द्धन लाल "अच्छी शिक्षा की ओर" राजपाल एंड संस द्वारा प्रकाशित, कश्मीरी गेट, दिल्ली 1975, पृ. 125।
2. सिंह प्रभाकर "लड़के की चाह में बढ़ रही है जनसंख्या" वनिता चेतना पत्रिका, भोपाल।
3. समाज कल्याण पत्रिका, नई दिल्ली, नवम्बर 2002 वर्ष 48, अंक 2।
4. दैनिक भास्कर "अमेरिका में भी बेटे की चाहत अधिक", 9 अक्टूबर, 2003, गुरुवार, पृ. 9।
5. प्रियदर्शी मनोज "नहीं जाती दिल से लड़कों की चाहत" दैनिक भास्कर, 11 अक्टूबर, 2004।
6. सिंह भावी जितेंद्र "जन्म पंजीकरण में भी भेदभाव" सहारा समय, 16 सितम्बर 2006, पृ. 21।
7. मल्ला मनीष/ बहल राकेश, जालंधर "बेटी 75 हजार में एवं बेटा 4 लाख में", दैनिक भास्कर, 27 दिसम्बर, 2007
8. बायती जमनालाल "बालिकाओं की उपेक्षा" वनिता चेतना पत्रिका, भोपाल, वर्ष-1, अंक-13, 1998 पृ. 1-3।
9. दैनिक भास्कर, भोपाल, बुधवार 11 अप्रैल 2007।
10. दैनिक भास्कर, 30 जून 2005, पृ. 15।
11. नर्सिग जया "बढ़ती भ्रूण हत्या घटती महिलाएं", वनिता चेतना, भोपाल, अप्रैल 1998, वर्ष 1, अंक 4, पृ. 1-3।
12. शर्मा कुमुद "नारी शिक्षा की चुनौतियां" समाज कल्याण जनवरी, 2002।
13. कपाड़िया प्रेम "सामाजिक रूढ़ियां बालिका शिक्षा

में बाधक" समाज कल्याण, नई दिल्ली, जनवरी 2002, वर्ष 47, अंक 6।
14. उपरोक्त 13।
15. विश्वामित्र जगेंद्र "महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा जरूरी" समाज कल्याण, नई दिल्ली, सितम्बर 2005, वर्ष 51, अंक 2।
16. चंद्रपाल, "महिला शिक्षा : एक अनसुलझा पहलू", समाज कल्याण, सितम्बर 2005, वर्ष 51, अंक 2, पृ. 25।
17. मधुर शिवकुमार "मध्यप्रदेश में बालिका शिक्षा की मंजिल कहां" समाज कल्याण, जनवरी 2002, वर्ष 47, अंक 6।
18. गंगावार कुलदीप, "सामाजिक रूढ़िवादिता बनाम स्त्री शिक्षा" समाज कल्याण, जुलाई 2000, पृ. 15।
19. खान अहमद शमशेर, "खुशहाली का मूलमंत्र है लैंगिक समानता" समाज कल्याण पत्रिका, केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, दिसम्बर 2005, वर्ष 5, पृ. 39।
20. आर्टीकल-2 कंवेशन आन दी राइट्स आफ चाइल्ड, भारत सरकार, वर्ष 1992।
21. प्रकाश वीरेंद्र, बालिका शिक्षा में लिंगीय भेद करना गैर कानूनी" महिला विधि भारती, नई दिल्ली, जुलाई-सितम्बर 1997, पृ. 253।
22. राय. बी. एल. "महिला शिक्षा : समस्या और समाधान" महिला विधि भारती, जुलाई-सितम्बर 1997, पृ. 273।
23. श्रीवास्तव सविता, "स्त्री शिक्षा की प्रासंगकिता" समाज कल्याण, नई दिल्ली, जुलाई 2002, पृ. 17-19।
24. उपरोक्त, पृ. 17
25. उपरोक्त, पृ. 16
26. उपरोक्त, पृ. 20
27. दैनिक भास्कर, 8 एवं 30 मार्च, 2007, पृ. 15।
28. विप्लव विनोद "शिक्षा में महिलाओं की उपेक्षा" दैनिक भास्कर, मधुरिमा 3 मई 2000, पृ. 3।
29. नामदेव बी.के. "आधी आबादी के ज्वलंत सवाल" वनिता चेतना भोपाल, 1998 वर्ष 1, अंक 11।
30. तनेजा राकेश, दैनिक भास्कर, 15 सितम्बर 2003 पृ. 1।
31. बानो सईटा, "शैक्षिक क्षेत्र में यदि ऐसा हो तो" समाज कल्याण, मार्च 2002, वर्ष 40, अंक 8, पृ. 10।
32. भास्कर नेटवर्क, भठिंडा (पंजाब), "बेटे की चाह में दो भाइयों ने किया पत्नियों का कत्ल" दैनिक भास्कर, 13 अगस्त 2007, पृ. 15।
33. दैनिक भास्कर, 9 अक्टूबर 2005, पृ. 15।
34. राज एक्सप्रेस, "जहां आवंटित लड़कियों को काफी कहा जाता है, "13 सितम्बर, 2006, पृ. 13।
35. बख्शी गोवर्द्धन लाल "अच्छी शिक्षा की ओर" राजपाल एंड संज द्वारा प्रकाशित कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1975, पृ. 127।

❑

पुलिस-जनता अंतरक्रिया

डा. एस.के. कटारिया

81/91, नीलगिरी मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर-20

पुलिस-जनता अंतरक्रिया (संबंध) व अवधारणा है जो समुदाय के मनोमस्तिष्क में व्याप्त पुलिस की परंपरागत छवि को तोड़ने एवं पुलिस के कार्यों में जनसहभागिता बढ़ाने पर केंद्रित है। यह **सर रॉबर्ट पील** के इस कथन को कि "पुलिस ही जनता है तथा जनता ही पुलिस है", को मूल मंत्र मानते हुए पुलिस एवं जनता के मध्य व्याप्त रही दूरियों को समाप्त करती है। विश्व भर में पुलिस को जनोन्मुख एवं उत्तरदायी बनाने के साथ-साथ उसके कार्यों में जनता की भागीदारी निभाने के प्रयास विगत कुछ दशकों से ही होने लगे हैं। यह अवधारणा "सामुदायिक पुलिसिंग' के रूप में भी सामने आती है।

लंदन पुलिस के एक पूर्व चीफ ने कहा था— "अंततः भय को समुदाय हराता है न कि पुलिस।" स्पष्ट है पुलिस कार्यों में समुदाय की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। लंदन पुलिस ने वर्ष 1845-46 में एक परिपत्र जारी कर पुलिस को जनता से व्यवहार करने संबंधी दिशा-निर्देश जारी किए थे। ऐसा **सर रॉबर्ट पील** के प्रधानमंत्रित्व के दौरान हुआ था। पुलिस सुधारों के प्रबल समर्थक सर पील पूर्व में गृहमंत्री भी रह चुके थे। भारत में सन् 1999 में आयोजित हुए पुलिस महानिदेशकों के सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि संपूर्ण देश में 'सामुदायिक पुलिसिंग' की अवधारणा को व्यावहारित रूप में क्रियान्वित किया जाएगा। व्यावहारिक रूप से भारत में विगत सदी के अंतिम दशक में सामने आए **'नागरिक अधिकार पत्र'** इस दिशा में सार्थक प्रयास थे।

विशेषताएं

पुलिस-जनता अंतरक्रिया या संबंधों की अवधारणा की निम्नांकित विशेषताएं कही जा सकती हैं—

1. यह अवधारणा पुलिस को **वर्दीधारी जनता** तथा आमजन को **बिना वर्दीधारी पुलिस** मानते हुए, दोनों पक्षों को एकीकृत करने को लक्षित है।
2. यह अवधारणा पुलिस की उस परंपरागत छवि को सुधारना चाहती है जो सत्ता, भय, रौब-दाब तथा निरंकुशता इत्यादि के रूप में कुख्यात रही है। यह अवधारणा **पुलिस राज्य की विरोधी** है तथा **लोकतांत्रिक पुलिस** की समर्थक है।
3. इसमें उन प्रविधियों या तौर-तरीकों को अपनाया जाता है जहां पुलिस एवं जनता का परस्पर संवाद या संपर्क होता है तथा जहां से परस्पर अविश्वास उत्पन्न होता है। अतः स्वाभाविक रूप से उन्हीं प्रविधियों के माध्यम से **कार्य व्यवहार में परिवर्तन** लाकर वांछित परिणाम प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं।
4. सभ्य समाज, मीडिया, दबाव समूह, सामुदायिक संगठन, क्षेत्र समितियां, मौहल्ला समितियां, समुदाय संपर्क समूह तथा अन्य कई प्रकार के संगठन एवं समूह इसमें प्रत्यक्ष तथा परोक्ष योगदान देते हैं।
5. पुलिस भाग का नागरिक अधिकार पत्र, वेबसाइट, (पोर्टल) तथा हेल्पलाईन इत्यादि इसी दिशा में आधुनिक प्रयास है।
6. इससे अपराधों की रोकथाम, अपराधों के अन्वेषण, अपराधियों की गिरफ्तारी, न्यायिक निर्णयन एवं स्वच्छ समाज के निर्माण में सहायता मिलती है।
7. यह अवधारणा जनता पर विश्वास करने तथा उससे सहयोग प्राप्त करने हेतु पुलिस तंत्र में व्यापक सुधार भी करवाती है।
8. यह अवधारणा **सुशासन** एवं **आर्थिक सुधारों** के परिणामों इत्यादि से लोकप्रिय हुई है जो संपूर्ण पुलिस तंत्र में पारदर्शिता, जवाबदेयता एवं संवेदनशीलता का समावेश कर रही है।

9. यह समग्र एवं **व्यापक पुलिस सुधारों** का वह तकनीकी भाग है जो पुलिस की कार्यप्रणाली, जन संपर्क एवं व्यवहार संबंधी पक्षों पर केंद्रित है।

संक्षेप में कहा जाए तो यह आधुनिक युग में शुरू **आधुनिक एवं मानवीय चेहरे से युक्त पुलिस** की कल्पना एवं उसे यथार्थ में उतारने का प्रयास है जो पूर्व में केवल नियामकीय पुलिस के रूप में प्रवर्तित रहा है।

केंद्रीय सूचना आयुक्त **शैलेश गांधी** कहते हैं— "लोग पुलिस से पूर्ण राज्य या शिक्षा एवं दवा देने वाली सामाजिक संस्था के बन जाने जैसी अपेक्षाएं नहीं करते हैं। वे तो वास्तव में केवल इतना चाहते हैं कि यह कानून का क्रियान्वयन करें तथा कानून के अनुसार कार्य करें।"

विधियां

पुलिस-जनता अंतरक्रिया की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं—

1. पुलिस विभाग का नागरिक अधिकार पत्र
2. पुलिस थाने में प्रदर्शित जनहित सूचनाएं
3. मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रचार
4. समुदाय संपर्क समूह
5. पुलिस पॉर्टल पर उपलब्ध सेवाएं
6. आमजन के साथ पुलिस की खुली चर्चा
7. स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
8. मीडिया के प्रयास
9. पुलिस हेल्पलाईन
10. मौहल्ला (कॉलोनी) नागरिक विकास समितियों से सहयोग
11. विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों एवं हित समूहों से सहयोग।

पुलिस के सिद्धांत

सर रॉबर्ट पील द्वारा पुलिस के लिए वर्णित नौ सिद्धांत इस प्रकार हैं—

1. पुलिस की स्थापना मुख्यतः अपराध एवं अव्यवस्था को रोकने हेतु हुई है।
2. पुलिस द्वारा निष्पादित होने कार्यों की क्षमता जनता के अनुमोदन पर निर्भर करती है।
3. जनता का आदर सुरक्षित एवं संधारित करने के लिए पुलिस को स्वेच्छा से जनता द्वारा कानून की देखभाल में सहयोग सुनिश्चित करना चाहिए।
4. जितनी मात्रा में जनता का सहयोग पुलिस को मिलेगा उतनी ही मात्रा में पुलिस को शारीरिक बल का प्रयोग कम करना पड़ेगा।
5. पुलिस, जनता सहयोग की मांग तथा उसके संरक्षण को जनमत के निर्माण द्वारा नहीं बल्कि कानून के निष्पक्ष पालन-प्रदर्शन द्वारा प्राप्त करे।
6. पुलिस केवल उसी स्थिति में तथा समुचित मात्रा में शारीरिक बल प्रयोग करे जबकि कानून व्यवस्था बनाए रखनी हो तथा जहां समझाना, परामर्श तथा चेतावनी देने की प्रक्रियाएं अपर्याप्त सिद्ध हो चुकी हों।
7. पुलिस को हर समय जनता से संबंध बनाए रखने चाहिए ताकि पुलिस ही पब्लिक है तथा पब्लिक ही पुलिस है, की ऐतिहासिक परम्परा को जीवंत किया जा सके। पुलिस प्रत्येक नागरिक एवं समुदाय के कल्याण तथा पूर्ण समय धान रखने वाली वह संस्था है जो जनता में से बनी है तथा उसे इस हेतु भुगतान मिलता है।
8. पुलिस को हमेशा अपने कृत्यों को प्रत्यक्षतः अपने दायित्व के संदर्भ में करना चाहिए न कि ऐसा लगे कि पुलिस ने न्यायापलिका की शक्तियां हड़प ली हैं।
9. पुलिस की कार्यकुशलता अपराधों एवं अव्यवस्था की अनुपस्थिति से प्रमाणित होती है न कि इनसे जूझने में दिखाई देने वाली गतिविधियों से।

उपर्युक्त वर्णित नौ सिद्धांतों से मिलते-जुलते सिद्धांत

सर रिचर्ड मैन तथा **सर रॉबर्ट मार्क** द्वारा भी दिए गए हैं।

सामुदायिक पुलिसिंग

सामुदायिक पुलिसिंग या Neighbourhood Policing तुलनात्मक रूप से नयी एवं आधुनिक पुलिस रणनीति एवं दर्शन है जो इस मान्यता पर टिका है। कि पुलिस की स्थानीय समुदाय के साथ अंतरक्रिया और सहयोग ही अपराधों पर नियंत्रण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रकार की पुलिस प्रणाली में पुलिसकर्मी स्वयं को उस समुदाय का ही भाग मानते हैं न कि सरकारी तंत्र के पुलिसकर्मी सा व्यवहार करते हैं। इसमें गाड़ियों में बैठकर गश्त करने के बजाय उस गली-मुहल्ले में पैदल चलकर लोगों से बात करके परस्पर समझ विकसित की जाती है। निष्पक्षता, प्रतिबद्धता, जवाबदेयता, पारदर्शिता, विश्वास तथा जन समस्याओं के प्रति संवेदनशील इस प्रणाली के मूल तत्त्व हैं। इसका केंद्रीय चिंतन यह है कि- – "पुलिस उच्च गुणवत्तापूर्ण सेवाएं प्रदान करने हेतु आलोचनात्मक ढंग से सोचे, योजना बनाए तथा अंतरवैयक्तिक संचार को बढ़ावा दे।"

सामुदायिक पुलिसिंग प्रणाली को स्थापित करने में ब्रिटेन के पूर्ण प्रधानमंत्री **सर रॉबर्ट पील** (1788-1850) का योगदान अग्रणी माना जाता है। उन्होंने सन् 1822 में गृह मंत्री पद धारण करने के पश्चात् पुलिस सुधारों का बीड़ा उठाया था। रॉबर्ट पील को **आधुनिक पुलिस का जन्मदाता** भी कहा जाता है। स्थिति यह है कि आज भी ब्रिटेन में पुलिसकर्मियों **'Bobby'** के अतिरिक्त **'Peelers'** भी कह दिया जाता है। कतिपय व्यक्तियों का मानना है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के पोर्टलैंड, ओरेगांव के मेयर (2004-08) **टॉम पॉटर** ने सामुदायिक पुलिसिंग की अवधारणा सन् 1967 में तब विकसित की थी जबकि वे दक्षिण-पूर्वी पोर्टलैंड में पुलिस अधिकारी पद पर कार्यरत थे।

भारत में **राष्ट्रीय पुलिस आयोग** द्वारा **पुलिस की छवि सुधार हेतु** मुख्यतः निम्नांकित सुझाव दिए गए थेः

1. पुलिसकर्मियों को जनमित्र बनाने हेतु उनके व्यावहार में परिवर्तन लाना
2. पुलिस कार्यप्रणाली में पारदर्शिता एवं खुलापन लाना
3. पुलिस कार्यप्रणाली में जनसहभागिता बढ़ाना तथा पुलिस की छवि सुधारना
4. पुलिस को अधिक कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाना।

उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सन् 1998 में गृह मंत्रालय ने प्रयोगात्मक रूप से यू.एन.डी.पी. की सहायता से राजस्थान, तमिलनाडु एवं असम के नौ पुलिसथानों के कार्मिकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज से करवाया था ताकि राज्य पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा संचालित पाठ्यक्रम में तद्नुसार सुधार किए जा सके। इसी प्रकार पंजाब में उग्रवादियों के विरुद्ध तथा आंध्रप्रदेश में नक्सलवादियों के विरुद्ध जनमत निर्माण कर सामुदायिक पुलिसिंग के माध्यम से पर्याप्त सफलता प्राप्त की गई थी। **ग्रेट ब्रिटेन में पुलिस-पब्लिक इण्टरफेस को इंटरनेट से जोड़कर निम्नांकित सेवाएं ऑनलाईन की गई हैं—**

1. अपराधों की रिपोर्टिंग तथा अन्य संरचनात्मक ई. प्रपत्र, डाटा।
2. स्थानीय पुलिस बल द्वारा ऑनलाईन अपराधों का पंजीकरण तथा व्यापारियों एवं आम जनता हेतु अपराधों के क्रम में यथावश्यक सूचनाओं की उपलब्धता ताकि लोग सुरक्षित रहें।
3. ई. मेल, एस.एम.एस., रिकॉर्डेड टेलीफोन या फैक्स से सूचनाएं प्राप्त करना एवं प्रसारित करना।

ब्रिटेन की नेशनल पुलिस पॉर्टल के माध्यम से जनता को देय समस्त पुलिस सेवाएं जोड़ी जा चुकी हैं। ब्रिटेन में सन् 2006 से यह सेवाएं व्यापक स्तर पर शुरू से पश्चात् पुलिस कार्यप्रणाली में उल्लेखनीय सुधार हुआ है तथा जनता ने भी संतुष्टि प्रकट की है।

भारत में पुलिस-जनता अंतरक्रिया : कतिपय उल्लेखनीय उदाहरण

भारत में पुलिस-जनता अंतरक्रिया के क्रम में 21वीं सदी की शुरुआत से तेजी से प्रयास होने लगे हैं। कतिपय चर्चित एवं सफल उदाहरण यहां वर्णित किए जा रहे हैं—

1. सन् 1998 के बम विस्फोटों के पश्चात् हुई साम्प्रदायिक हिंसा के पश्चात् **कोयम्बटूर** में गठित की गई क्षेत्र समितियों के माध्यम से पुलिस ने आसूचना एकत्रण एवं स्थानीय लोगों से सहयोग प्राप्त किया। युवाओं विशेषतः राष्ट्रीय सेवा योजना के कार्यकर्ताओं से बनी यह समितियां लोकप्रिय भी हैं।
2. तमिलनाडु में थाना क्षेत्र के बीट क्षेत्र के आधार पर बने पुलिस सहायता केंद्रों तथा हेल्पलाइंस के साथ-साथ वाईड एरिया नेटवर्क तथा वाहनों के माध्यम से मोबाइल काउंसेलिंग सेण्टर्स के द्वारा पुलिस ने सीधा जनता से संवाद स्थापित किया। त्रिचि में सामुदायिक पुलिसिंग का सफल प्रयोग हो रहा है।
3. एशियाई विकास बैंक की सहायता से केरल में सन् 2000 में लागू हुई पुलिस आधुनिकीकरण परियोजनान्तर्गत राज्य के 417 में से 57 पुलिस थानों में आधारभूत संरचना विकास के साथ-साथ पुलिस प्रशिक्षण एवं त्रिवेंद्रम में **CAATCH** (Community Action Against Thief Culprits and Hooligans) कार्यक्रम के द्वारा रेजिडेण्ट्स ऐसोसिएशंस से पुलिस ने निरंतर (मासिक) संपर्क अभियान शुरू किया। शहर का प्रत्येक पुलिसथाना ऑनलाईन हुआ तथा अपराधों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।
4. मध्य प्रदेश में पुलिस-जनता अंतरक्रिया में बहुआयामी रणनीति अपनाई गई। इस 17 सूत्री कार्ययोजना में ग्राम रक्षा समिति, परिवार परामर्श केंद्र, नशामुक्ति कैम्प, नगर सुरक्षा समिति, मोबाइल, पुलिस स्टेशन, अंधजन सहायता, बाल मित्र पुलिस, ट्रोमा प्रबंध, चाइल्डलाईन, घरेलू नौकरों का सत्यापन, वरिष्ठ नागरिकों की देखभाल, कमजोर वर्गों के पीड़ित व्यक्तियों को सहायता एवं सशक्तिकरण, शारीरिक रूप से निःशक्तजनों की सहायता तथा निजी एजेन्सियों का नियमन इत्यादि प्रयास सम्मिलित थे। मध्य प्रदेश में परम्परागत रूप से डकैती समस्या से मुक्ति पाने हेतु महाराजा **जीवाजी राव सिंधिया** के शासनकाल में ही ग्राम रक्षा सीमिति कार्यरत रही है। वर्तमान में 4.5 लाख से भी अधिक लोग इन समितियों से जुड़े हैं। मध्यप्रदेश के प्रत्येक जिले में **सामुदायिक पुलिसिंग** कार्य हेतु एक अधिकारी नामित है।
5. राजस्थान द्वारा विश्वस्तरीय एवं श्रेष्ठ पुलिस थानों की दिशा में बढ़ाए गए कदमों का लक्ष्य आई. एस. ओ. प्रमाण पत्र करने हेतु था। प्रत्येक पुलिस जिले में एक 'मॉडल पुलिस स्टेशन' स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया। नवम्बर, 2005 में जयपुर का विधायकपुरी पुलिसथाना **उत्तरी भारत का आई.एस.ओ. 9001-2000** प्रमाण पत्र प्राप्त करने वाला **प्रथम थाना** बना। सन् 2007 तक राज्य के 41 पुलिस स्टेशन यह प्रमाण पत्र पा चुके थे। यह प्रमाण पत्र कार्यकुशल सेवाओं, गुणवत्ता तथा लोगों को प्रदत्त उच्च स्तरीय सेवा हेतु दिया जाता है। आल्टस ग्लोबल एलायंस (हेग) द्वारा जब जयपुर के **शिप्रा पथ पुलिस थाने को विश्व का नम्बर एक** थाना घोषित किया गया तो स्थानीय निवासियों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि यहां पारदर्शिता, जवाबदेयता, मानवीय व्यवहार तथा जनसहभागिता

की दिशा में अत्यधिक प्रयास हुए थे। राज्य में समुदाय संपर्क समूह में तेजी से प्रगति हुई तथा सन् 2007 तक राज्य में 25 हजार से अधिक सी. एल. जी. बन चुके थे, जिनकी सहायता से 60 हजार शिकायतों एवं 8 हजार मुकदमों का निस्तारण समुदाय के हस्तक्षेप से किया गया। महानिदेशक अमरजोत सिंह गिल द्वारा चलायी गई 'केस ऑफीसर स्कीम' के अंतर्गत प्रत्येक थाने ने उन प्रकरणों को प्राथमिकता पर लिया जो समाज में चर्चित रहे थे। इन मुकदमों में शीघ्र निस्तारण तथा अपराधियों की सहजता से जमानत नहीं होने से समाज में पुलिस की छवि सुधरी। जनसहभागिता कार्यक्रम के अतिरिक्त महिला परामर्श केंद्र, जयपुर में विश्वसनीय युवाओं को सामुदायिक पुलिस अधिकारी नाम देकर उनसे सहयोग प्राप्ति, वरिष्ठ नागरिकों हेतु संबल योजना इत्यादि नवाचार हाल में लिए गए। महिलाओं, विशेषतः छात्राओं से छेड़खानी रोकने हेतु **'ऑपरेशन गरिमा'** संचालित हुआ। सन् 2007 से राज्य में विधायकपुरी पुलिस थाने में **ऑनलाईन एफ. आई.आर.** कराने की सुविधा प्रदान कर सामयिक कदम उठाया गया। **क्राइम हेल्पलाईन** (1090) तथा **चाइल्ड हेल्पलाईन** (1090) के माध्यम से भी त्वरित सेवाएं दी जाने लगी हैं।

गृह मंत्रालय के मानवाधिकार संभाग तथा कॉमनवैल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटीव के संयुक्त तत्वावधान में देश के चार महानगरों में सन् 2004 में 'पुलिस-जनता अंतरक्रिया' विषय पर आयोजित हुई संगोष्ठियों में पुलिस कार्यों में जनता की सहभागिता बढ़ाने, इस दिशा में हुए सफल कार्यों को प्रचारित करने तथा बड़े शहरों हेतु इस संदर्भ में कार्य योजना निर्मित करने के उद्देश्यों पर व्यापक चर्चा हुई थी। दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी पुलिस एवं जनता के बीच संबंधों को सुधारने पर बल प्रदान किया है। समय की मांग है कि इस दिशा में और अधिक प्रयास किए जाएं।

संदर्भ

1. सुरेंद्र कटारिया, **भारतीय लोक प्रशासन,** नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009

2. कमीशन एंड कमेटी ऑन पुलिस, पुलिस अनुसंधान एंव विकास ब्यूरो, नई दिल्ली, 2006

3. दूसरा प्रशासनिक सुधार आयोग, (2005-08), भारत सरकार, नई दिल्ली

4. जोगिंदर सिंह, **राजनीति और अपराध का मायाजाल,** दैनिक भास्कर, 14 अगस्त, 2004

5. ए.जी. नूरानी, **तब तो ऐसे लोग ही बनाएंगे कानून,** दैनिक भास्कर, 21 मई, 2007

❑

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय
पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस, कारागार एवं न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित विषयों पर हिन्दी में पुस्तक लेखन के लिए रचनाएं दिनांक 30.9.08 तक आमंत्रित की जा रही हैं। मूल प्रकाशित पुस्तकों पर 5 पुरस्कार 30,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है), दो पुरस्कार अनूदित मुद्रित पुस्तकों के लिए 14,000/- रु. प्रति पुरस्कार (एक पुरस्कार महिलाओं के लिए आरक्षित है)। योजना के भाग दो में 40,000/- रु. के दो पुरस्कार हैं। जिसके लिए निर्धारित विषयों पर रूपरेखाएं आमंत्रित की जाती हैं। जिसमें सामान्य वर्ग के लिए **दिए गए विषय पर आवेदक उस विषय पर लिखने वाली पुस्तक में क्या-क्या सामग्री व अध्यायों आदि का उल्लेख करते हुए 5-6 पृष्ठ की एक रूपरेखा को प्रस्तुत करना होगा** तथा महिलाओं के लिए आरक्षित विषय में भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनाई जाएगी। रचनाएं/रूपरेखाएं भेजने की अंतिम तिथि सामान्यतः 30 सितंबर होती है। विस्तृत जानकारी के लिए कृपया संपादक (हिंदी), पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सी.जी.ओ. कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क करें।

(दूरभाष : 011-24362418, 24360371 एक्स-253 तथा फैक्स : 011-24362425)

अपराध विज्ञान तथा पुलिस विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु अध्येतावृति योजना

पुलिस विज्ञान तथा अपराध विज्ञान में डाक्टरेट कार्य हेतु ब्यूरो द्वारा 6 अध्येतावृतियों के लिए भारतीय नागरिकों से आवेदन पत्र आमंत्रित किए जाते हैं। इस योजना के तहत विज्ञापन प्रति वर्ष मई माह में भारत के सभी प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। इसके लिए अंतिम तिथि 30 जून होती है। इसमें अभ्यर्थी को पी.एच-डी. के लिए विश्वविद्यालय से पंजीकृत होना आवश्यक है। इसमें अभ्यर्थी को पहले 2 वर्ष 8000/- रु. तथा तीसरे वर्ष 9000/- रु. तथा इसके साथ फुटकर खर्च के लिए 10000/- रु. तथा जिस संस्था से वह पंजीकृत होगा उसे 3000/- रु. प्रदान किए जाएंगे। विस्तृत जानकारी के लिए अनुसंधान एकक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से संपर्क किया जा सकता है। पूर्ण जानकारी कार्यालय की वेब साइट www.bprd.gov.in में भी देखी जा सकती है। (संपर्क के लिए फोन नं. 01124360371/243)

पुलिस एवं कारागार संबंधी विषयों पर अनुसंधान परियोजनाएं आमंत्रित

पु.अनु.वि. ब्यूरो (गृह मंत्रालय) **पुलिस एवं कारागार** से संबंधित विभिन्न विषयों पर अनुसंधान परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों, विश्वविद्यालयों व व्यक्तिगत शोधकर्ताओं को उनके संबंधित विश्वविद्यालयों के माध्यम से आवेदन आमंत्रित कर रहा है। आवेदन भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2008 है। विस्तृत जानकारी के लिए उपनिदेशक (अनु.) एवं सहायक निदेशक (सी.सी.), ब्लाक सं. 11, 3/4 मंजिल, सीजीओ कंप्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 (फोन नं. 01124362418 एवं 01124263872) पर संपर्क कर सकते हैं। तथा ब्यूरो की www.bprd.gov.in वेब साइट से भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	**भारतीय पुलिस का इतिहास** (अतीत काल से मुगल काल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	**भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन**	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	**विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका**	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	**स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व**	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	**मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका**	श्री हरीश नवल	—
8.	**सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्भव**	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	**समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका**	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	**पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता**	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	**महिला और पुलिस**	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	**मानवाधिकार और पुलिस**	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	**नई आर्थिक नीति एवं अपराध**	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	**बाल अपराध**	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	**न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां**	डा. शरद सिंह	200/-
16.	**मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस**	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	**सामुदायिक पुलिस व्यवस्था**	डा. तपन चक्रवर्ती डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	**संगठित अपराध**	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	**पुलिस कार्यों का निजीकरण**	डा. शंकर सरौलिया	330/-
20.	**साइबर क्राइम**	डा. अनुपम शर्मा	450/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।

लेखकों से निवेदन

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :--

संपादक
पुलिस विज्ञान
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, चौथी मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
फोन : 24360371 एक्स. 253

वैब साइट — डब्लू डब्लू डब्लू.बीपीआरडी.जीओवी.इन
डब्लू डब्लू डब्लू. बीपीआरडी.एनआईसी.इन